शृङ्गारशतकम्

(हिन्दी-गद्य-पद्यानुवाद)

S
891.202 1
B 469 S

S
891.2021
B469S

विद्याभवन, वाराणसी-१

Library IIAS, Shimla
S 891.202 1 B 469 S
00045955

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

६७

Bhartrihari

श्रीभर्तृहरिविरचितं

शृङ्गारशतकम्

Shringaarasatakam

(हिन्दी-गद्य-पद्यानुवाद)

गद्यानुवादकः Translated by

श्री जगन्नाथ शास्त्री होशिंग

Jagannath Shastri Hoshing

पद्यानुवादकः

श्री राधेलाल त्रिवेदी

and Radheylal Dwivedi

Chowkhamba

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

Varanasi

१९६७

1967

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : द्वितीय, सं० २०२४

मूल्य : १-२५

Library IIAS, Shimla
S 891.202 1 B 469 S
00045955

© The Chowkhamba Vidyabhawan

Post Box No. 69,

Chowk, Varanasi-1 (India)

1967

Phone : 3076

S
891.2021
B469S
45955
22.1.74

प्रधान कार्यालय :—

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ योगीन्द्र महाराज भर्तृहरि कृत-सुभाषित-त्रिशती का द्वितीय शतक (शृङ्गारशतक) है। इसमें उन्होंने क्रम से १—स्त्री-प्रशंसा, २—सम्भोग-वर्णन, ३—कामिनी-निन्दा, ४—सुविरक्त-दुर्विरक्त-पद्धति, ५—ऋतु-वर्णन, इन विषयों पर सुललित पद्यों में विद्वत्तापूर्ण सूक्तियाँ कही हैं।

यह शतक भारतवर्ष में सर्वत्र विद्वत्समाज में प्रचलित एवं प्रशंसित है।

महाराज भर्तृहरि व्याकरण के अत्यन्त कठिन उच्च कोटि के 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ के निर्माता माने जाते हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि परम प्रसिद्ध सिद्धगुरु गोरक्षनाथ जी के ये शिष्य थे, और उन्हीं से योगविद्या की शिक्षा प्राप्त कर उसकी साधना से अमर हो गये। इन्हें लोग महाराज विक्रमादित्य का भाई भी मानते हैं।

अस्तु, हिन्दीभाषियों की सुविधा के लिए श्री जगन्नाथ शास्त्री होशिङ्ग जी ने इसकी हिन्दी व्याख्या की है तथा श्री राधेलाल त्रिवेदी ने हिन्दी पद्य में भाषानुवाद भी किया है, जिससे सर्वसाधारण भी इसके भावों को हृदयङ्गम कर शान्तिलाभ कर सकते हैं।

इसमें पुष्प चिह्न (❀) से अंकित श्लोकों को प्रक्षिप्त मानना चाहिये। मूल ग्रन्थ में इनका पाठ नहीं है किन्तु उपयुक्त समझकर उनका भी समावेश कर दिया गया है तथा उनका भी हिन्दी-पद्यानुवाद एवं भाषानुवाद कर दिया गया है।

यदि इससे जनता का कुछ भी उपकार हुआ तो प्रकाशक तथा सम्पादक अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—सम्पादक

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ
कामदेव को प्रणाम	१
स्त्री-प्रशंसा	२
चतुर नारियों के भूषण ही हथियार	,,
स्त्री का सौन्दर्य : उसका प्रकाश	३
स्त्री का सौन्दर्य : स्वाभाविक भूषण	,,
युवती का आकर्षण	६,९,१०,११
कामिनियों को अबला कहना कवि की भूल है	६
कामदेव नारी का सेवक है	७
स्त्री में शान्ति के अंग तो हैं पर वे सांसारिक भय उपजाते हैं	,,
नारी केवल गुण से चित्त को वेध लेती है	८
बिना मृगनयनी संसार अन्धकारमय है	,,
बिना पुण्य के सुन्दर स्त्री नहीं मिलती	१०
कान्ता के आलाप का एकान्त में सुख	११
संभोग-वर्णन	१२
स्त्री-दर्शन के पश्चात् आलिङ्गन की ओर उसके पश्चात् उसे न छोड़ने की इच्छा	,,
सच्चा स्वर्ग प्यारी का संग है	१३
युवतियों का प्रेम धन्य है	,,
मनोरम स्त्री-संभोग भाग्यवान् ही पाते हैं	१४
वृद्धावस्था में नर-नारी को काम से पीड़ित कर ब्रह्मा ने अनुचित किया	१५
स्त्री तभी तक प्यारी लगती है जब तक वृद्धावस्था उसका रूप न बिगाड़ दे	,,
नवयौवन अनर्थ का स्थान	१६
नवयौवन में भी जिसे काम-विकार न हो वह पुरुष धन्य है	१७
घर में कान्ता बाट देख रही होगी ऐसा ध्यान कर पुरुष कष्टों को झेल लेता है	,,

	पृष्ठ
जब घर में स्त्री आ जाती है तो स्वतंत्र मनुष्य दीनभाव प्रकट करने लगता है	१८
कामिनी नहीं होती तो संसार को पार करना कठिन होता	१९
कान्ता को उत्तम ताम्बूल प्रिय होता है	,,
परोपकार से अधिक पुण्य और कमललोचनी से अधिक रम्य वस्तु संसार में नहीं है	२०
एकचित्तता समागम का मुख्य फल है	,,
मदमाती स्त्रियाँ सेवनीय हैं	२१
स्वप्न समान चंचल संसार में योग और भोग दो ही गति हैं	,,
या तो गंगातट पर वास करे या फिर कामिनियों के पास रहे	२२
तरुणी सुख-दुःख दोनों का कारण है	२३
नारीरूप के महामोह में पंडित भी फँस जाते हैं	,,
स्त्री का स्मरण, दर्शन और स्पर्श तीनों मोह में डालते हैं फिर भी नारी प्यारी कहलाती है	२४
वही स्त्री प्रत्यक्ष में अमृत और परोक्ष में विष के समान बन जाती है।	,,
अनुरक्त स्त्री सुधातुल्य और विरक्त स्त्री विषतुल्य है	२५
स्त्री माया की डिबिया है	,,
कवियों ने स्त्री की मिथ्या प्रशंसा की है	२६
लीलावतियों का स्वभाव ही लीला करना है	,,
सुन्दर नारियों के आचरण	२७
स्त्री कुटिल सरिता के समान है	२८
स्त्री का कोई प्यारा नहीं	२९
स्त्री विषधर सर्प के समान है	,,
कामदेवरूपी धीवर स्त्रीरूपी वंशी से शिकार खेलता है	३०
कान्ता के कुचरूपी दुर्ग में कामरूपी लुटेरा वास करता है	३१
मुग्धाक्षी के नेत्र-प्रहार-क्षत पर वैद्यों का वश नहीं चलता	,,
अभागी इन्द्रियाँ स्त्री की सुन्दरता में फँस जाती हैं	३२
काम-विकार असाध्य रोग है	,,

	पृष्ठ
वेश्या की निन्दा	३३-३४
भाग्यवान वही है जिसे नवयुवती के देखने पर विकार उत्पन्न नहीं होता	३४
विरक्तों पर स्त्री का वश नहीं	३५
फटे दिलों का संयोग, वियोग से भी बुरा है	३७
वर्षाकाल में यात्री का उत्साह कुण्ठित हो जाता है	,,
कान्ता-सुख क्षणभंगुर है	३८
योगी को चन्द्रमुखी से क्या प्रयोजन	,,
सुन्दरी के दर्शन से ज्ञान-दीप बुझ जाता है	३९
कमलनयनी का त्याग कठिन है	४०
तपस्या से अन्त में स्वर्गस्थ अप्सराएँ मिलती हैं	,,
कामदेव का मद कौन चूर्ण कर सकता है ?	४१
मनुष्य सन्मार्ग पर तभी तक चलता है जब तक लीलावती का कटाक्षपात नहीं होता	,,
प्रेमातुर स्त्रियों के कार्य-क्रम में ब्रह्मा भी बाधा नहीं डाल सकते	४२
महत्तादि तभी तक रहती है जब तक कामाग्नि प्रज्वलित नहीं होती	
स्त्रियों के कारण सद्गति पाना कठिन है	४३
कामदेव दीनावस्था में भी नहीं छोड़ता	,,
कामदेव की मुद्रा स्त्री है	४४
घृतादि सेवन करते हुए इन्द्रियों को वश में रखना असम्भव है	४५
वसन्त में प्रकृति मतवाली हो जाती है	,,
वसन्त में विरही अधिक कष्ट पाते हैं	४६
चैत्र मास के भोग भाग्यवान् ही करते हैं	,,
वसन्त में विरहिणी कान्ता की यात्रा	४७
वसन्त की वायु से प्रिया की प्रसन्नता	४८
वसन्त में सभी कामासक्त हो जाते हैं	,,
ग्रीष्म ऋतु में मद और मदन का जोर देनेवाली वस्तुएँ	४९

	पृष्ठ
जो पदार्थ भोगी के चित्त में क्षोभ उत्पन्न करते हैं वे योगी के चित्त में नहीं करते	५०
वर्षा ऋतु की शोभा	५०-५१
वर्षा ऋतु में विरहिणी स्त्रियों की व्याकुलता	५२
वर्षा ऋतु में प्रेमियों का सुख	५३
शरद् ऋतु के भाग्यहीन नर	,,
हेमन्त ऋतु के सुख	५४-५५
शिशिर काल के पवन का विट सदृश आचरण	५६
शिशिर काल के पवन का पति सदृश आचरण	,,
मन में चाह न होने पर सुन्दर वस्तु भी कुछ नहीं	५७
रुचि के अनुसार वैराग्य, नीति व शृङ्गार से प्रेम	,,

———

॥ श्रीः ॥

श्रीभर्तृहरिनिर्मित-शतकत्रये

शृङ्गारशतकम्

हिन्दी पद्य-गद्यमय-भावानुवादसहितम् ।

(मङ्गल)

शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकुम्भदासाः ।
वाचामगोचर-चरित्र-विचित्रिताय
तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय ॥ १ ॥

अध्याय १—कामदेव और नारी

१—भगवान कामदेव को प्रणाम

विधि हरिहर जिनके प्रताप से, शक्तिन के परिचारक हैं ।
गिरा रमा गिरिजा के गृह में, सेवक सदा सहायक हैं ॥
जिनके शौर्य विचित्र अपार का, वर्णन सदा लगै अभिराम ।
ऐसे कामदेव मकरध्वज, को हों मेरे कोटि प्रणाम ॥

जिसने शिव, ब्रह्मा और विष्णु को मृगनयनियों (स्त्रियों) के घर के कामों में सतत दास बना रखा, जिसके वर्णन में वाणी असमर्थ है ऐसे चरित्रों से विचित्र मालूम पड़नेवाले उस भगवान मकरध्वज (कामदेव) को प्रणाम ॥ १ ॥

(स्त्री-प्रशंसा)

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ २ ॥

२—अपने भावों से स्त्रियाँ बन्धन में डलवा देती हैं
मन्द मन्द मुसकाय, दिखाकर भाव, जनावों लज्जा ।
मुख उल्टा कर, अध कटाक्ष से, दर्शाती हैं सज्जा ॥
ईर्षा, भय, लीला की कलही, अथवा मीठी वाणी बोल ।
निज भावों नारियाँ जगत में, बन्धन जाल बिछातीं खोल ॥

यौवनजन्य आकस्मिक मन्दहास्य से, बाल्य-यौवन-सन्धि काल में उत्पन्न शृङ्गार-विषयक प्राथमिक अन्तःकरण-विकार रूप भाव से, अङ्गप्रच्छादन-मुख-नामनादि संकोच रूप लज्जा से, आकस्मिक भय से, लज्जा से पूर्ण प्रसरण न पानेवाले अर्धकटाक्ष (तिरछी दृष्टि) द्वारा देखने से, बातचीत से, ईर्ष्या के कारण कलह से, लीलाविलास से, इस प्रकार सम्पूर्ण भावों से स्त्रियाँ तो पुरुषों के संसार-बन्धन का कारण हैं ॥ २ ॥

भ्रूचातुर्यात् कुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः
स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताश्च हासाः ।
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च
स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधं च ॥ ३ ॥

३—चतुर नारियों के भूषण और हथियार
भ्रू-चातुर्य दिखा, कटाक्ष कर, आँखों को मटकाती हैं ।
मीठी बातें करते करते, लज्जित हो मुसकाती हैं ॥
चलें चाल लीलामय धीरे, रुक, दिखलाती हैं शृङ्गार ।
ये ही होते चतुर नारियों के, तन-भूषण अरु हथियार ॥

भौहों के उतार-चढ़ाव आदि की चतुराई से नेत्रों को आकुञ्चित करनेवाले कटाक्ष, प्रेमपूर्ण बातचीत, लज्जापूर्ण हास, विलास द्वारा मन्द-मन्द गमन एवं स्थित होना—ये सब पदार्थ स्त्रियों के भूषण और आयुध भी हैं ॥ ३ ॥

क्वचित्सभ्रूभङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिगतैः
क्वचिद् भूरित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः ।
कुमारीणामेतैर्मदनसुभगैर्नेत्रवलितैः
स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिकीर्णा इव दिशः ॥४॥

४—स्त्री का सौन्दर्य—उसका प्रकाश

भौंह चलाती कभी, कभी—लज्जा से गड़ती जाती है ।
भय खाती है कभी, कभी—लीला-विलास दिखलाती है ॥
मदन भरे नेत्रों से भूषित, कामिनि मुख यों शोभित हो ।
नीले कंज पुञ्ज से जैसे, सभी ओर आलोकित हो ॥

कहीं-कहीं भौंहों के संकोचन, कहीं-कहीं लज्जापूर्ण, कहीं-कहीं-भय से चञ्चल और कहीं-कहीं लीला (गमनागमन) से कमनीय, काम से सुन्दर तरुणियों के नयन-विलासों से दिशाएँ विकसित नील कमलों के समूह से व्याप्त हैं ॥ ४ ॥

वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः ।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥ ५ ॥

अध्याय २—स्त्रियों की महिमा व आकर्षण-शक्ति

५—स्त्री का सौन्दर्य-स्वाभाविक भूषण

चन्द्र सरीखा उज्ज्वल मुख है, नेत्र कमल को देते मात ।
वर्ण स्वर्ण से ऊँचे सवाया, केश-कान्ति जीते अलिपाँत ।
वक्षस् से लजता गज-मस्तक, क्या सुन्दर नितम्ब भारी !
कोमल वाणी हर लेती मन, स्वाभाविक भूषण नारी ॥

चन्द्रमा के समान विकसित होनेवाले अर्थात् सुन्दर मुख, कमलों को हँसी करने में अर्थात् लजानेवाले दोनों नयन, सुवर्ण को निन्दित करनेवाला अर्थात् उसकी अपेक्षा भी रुचिर वर्ण (अङ्गकान्ति), भ्रमरियों को जीतनेवाला अर्थात् उनसे अधिक काले केश, हाथी के गण्डस्थल की शोभा को हरनेवाले अर्थात् पुष्ट तथा उन्नत उभय कुच, गुरु अर्थात् दुःख से वहन करने योग्य नितम्ब, मधुर और कोमल वाणीविलास अर्थात् बोली ये सब युवतियों के स्वाभाविक भूषण हैं ॥ ५ ॥

स्मितं किञ्चिन्मुग्धं सरलतरलो दृष्टिविभवः
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्ति-सरसः ।
गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव न हि रम्यं मृगदृशः ॥६॥

६—युवती का आकर्षण (१)

चञ्चल सरल नेत्र से देखे, मन्द मन्द मुसकाती है ।
दिखला नये विलास रसीली—बातें कभी बनाती है ॥
किसलय सी धीरे चलती है, मृगनयनी मस्ताने पर ।
कौन भाव सुन्दर नहिं होते, युवा अवस्था आने पर ?

यौवनावस्था में पहुँचनेवाली मृगनयनियों की कौन सी वस्तु सुन्दर नहीं होती अर्थात् सभी कुछ रमणीय होता है। जैसे—मन्दहास (स्मित) कुछ रमणीय ही होता है। दर्शन-सम्पत्ति (देखने का ढंग) सरल एवं चञ्चल हुआ करता है। भाषण की चतुराई (शैली) नये विलासपूर्ण वचनों द्वारा रसपूर्ण होती है। गतियों (चालों) का उपक्रम भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक लीलाओं से सम्बन्ध रखता है ॥ ६ ॥

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं ? मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि किं ? तदास्यपवनः, श्रव्येषु किं ? तद्वचः ।
किं स्वाद्येषु ? तदोष्ठपल्लवरसः, स्पृश्येषु किं ? तद्वपु–
र्ध्येयं किं नवयौवने सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमाः ॥ ७ ॥

७—युवती का आकर्षण (२)

दर्शनीय सबसे उत्तम क्या ? मृगनयनी-मुख प्रेम भरा।
चले सुवासित वायु कहाँ ? उसके मुँह से ही महँक भरा ॥
सुनने को क्या ? बातें उसकी, स्वाद कहाँ ? अधरामृत पान।
छूने को ? उसका शरीर ही, ध्यान योग्य ? सब यौवन शान ॥

इस संसार में नवीन यौवनावस्था के समय सहृदयों (रसिकों) को दर्शनीय वस्तुओं में उत्तम क्या है ? मृगनयनी का प्रेम से प्रसन्न मुख; आघ्राण (सूंघना) के योग्य में उत्तम क्या ? उसके मुख का सुगन्धित पवन, श्रवण-योग्यों (सुनने लायक वस्तुओं) में उत्तम क्या ? उसके मधुर वचन; अनुभवनीयों में उत्तम क्या ? उसके पल्लव के समान ओष्ठ का रस अर्थात् अधरामृत; स्पर्श-योग्य वस्तुओं में उत्तम क्या ? उसका कुसुम-सुकुमार शरीर; और ध्यान (चिन्तन) योग्यों में उत्तम क्या ? सब देशों में या सब समय उस विलासिनी के विलास ही चिन्तनीय हैं। यहाँ प्रश्नोत्तर द्वारा नेत्रादि षट् इन्द्रियों के आनन्ददायक पदार्थ कवि ने वर्णित किये हैं ॥ ७ ॥

एताश्चलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ
झङ्कारनूपुरपराजितराजहंस्यः।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥८॥

८—युवती का आकर्षण (३)

चञ्चल तरुणी चलें बजाती, कंकन नूपुर की झनकार।
राजहंसिनी देख चाल को, खाती हैं अपने मन हार ॥
डरे हुए भोले मृगनयनों, देखा कहीं कटाक्ष किया।
है वह कौन, न मन जिसका हो, चन्द्रमुखी ने जीत लिया ॥

गति की विचित्रता से ऊपर-नीचे होने वाले कङ्कण अथवा चूड़ियाँ, घुंघरूदार करधनी से उत्पन्न होनेवाली झंकार (झन-झन, झुन-झुन की) ध्वनि एवं नूपुर (चरणालङ्कार-पायजेब आदि) की ध्वनि से राजहंसियों को मात करने-वाली अर्थात् सशब्द मन्द गमन द्वारा राजहंसियों को जीतनेवाली ये तरुणियाँ

चकित अतएव सुन्दर हरिणियों के समान कटाक्षों से किसके मन को विवश नही करतीं ? अर्थात् सभी को अपने अधीन करती हैं ॥ ८ ॥

कुङ्कुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा ।
नूपुरहंसरणत्पद्मा कं न वशीकुरुते भुवि रामा ॥ ९ ॥

९—युवती का आकर्षण (४)

उबटन केसर कर शरीर पर, कँपा हार गोरी छाती ।
चरण कमल के नूपुर से जो, हंस शब्द करती जाती ॥
यौवनपूर्ण मनोहर रामा, पृथ्वीतल पर यों बिचरे ।
कौन बचा है जिसे सुन्दरी, वश अपने में नहीं करे ॥

केसर के चन्दन से चिह्नित देहवाली, अतएव अरुण वर्ण या हरिद्राभ सुन्दर स्तनों से हार (मोती की माला) को कंपानेवाली, कमलरूपी चरणों पर शब्दायमान हंस-रूपी नूपुरों को धारण करनेवाली, सुन्दरी इस भूमि पर किसे वश में नहीं लाती ? अर्थात् सभी को वश में करती है ॥ ९ ॥

नूनं हि ते कविवरा विपरीतवाचो
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीस्ताः ।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ॥१०॥

१०—कामिनियों को अबला कहकर कवियों ने भूल की, वे तो सबला हैं—

बतलाईं कामिनि जिन निबला, वे कवि बोलें बिना बिचार ।
कैसे हो सकतीं वे अबला, जब उनका ये बल-विस्तार ॥
इन्द्रादिक परास्त करती हैं, तिरछी नजरों करें शिकार ।
निश्चय जानो सबला उनको, चाहे अबला कहें हजार ॥

वे श्रेष्ठ कवि या कवीन्द्र निश्चय ही विपरीत भाषण करनेवाले हैं अर्थात् उलटा या असत्य कहनेवाले हैं, जो सर्वदा उन कामिनियों को "अबला" (बलहीन) कहते हैं । जिन कामिनियों ने अपनी अत्यन्त चंचल आँख की पुतलीवाली आँखों या दृष्टियों के पात से इन्द्र-प्रभृति सामर्थ्यशालियों को भी

जीत लिया, भला वे "अबला" कैसे कही जा सकती हैं। उन्हें अबला कहना उन कवियों की वाणी अवश्य ही विपरीत है ॥ १० ॥

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसञ्चार-सूचितेषु प्रवर्तते ॥ ११ ॥

११—कामदेव नारी का सेवक है

कामदेव रहते हैं निश्चय, सुन्दर भ्रू वाली के दास।
जिसे देख है सैन चलाती, पहुँच उसी दम लेते फाँस ॥

कामदेव निश्चय ही उस सुभ्रू (सुन्दरभृकुटीवाली) का आज्ञापालक सेवक है। क्योंकि उस कामिनी के नेत्र जिस ओर सूचित करते हैं उसी ओर वह जाने के लिए सर्वदा प्रवृत्त रहता है ॥ ११ ॥

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने,
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः ।
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरौ वक्षोजकुम्भाविमा–
वित्थं तन्वि ! वपुः प्रशान्तमपि ते रागं करोत्येव नः ॥१२॥

१२–स्त्री में शान्ति के अङ्ग तो हैं पर हममें वे सांसारिक भय उपजाते हैं

छप्पय

केश संयमी बने सँवारे, लोचन पहुँचे श्रुति के पार।
सोहै मुख में दन्तपंक्ति शुचि, द्विजसमूह सी बँधी कतार ॥
सुभग कुम्भ से कुच दो सोहें, लुभा रहे मन मुक्ताहार।
संयम, श्रुति, द्विज, मुक्ता सबही, शान्ति अङ्ग कर रहे विहार ॥
फिर भी नारी तन हमें, शान्ति नहीं कुछ देत।
केवल डाले राग में, जगत जाल के हेत ॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारे केश तो संयमी (बंधे) या यमनियमादि लग्न हैं, और नेत्र श्रुति = वेद अथवा श्रवण (कान) के अन्तिम छोर तक अर्थात् वेदान्त विचार में मग्न अथवा कान के अन्त तक फैले हुए अत्यन्त विशाल हैं। मुख के भीतर रहते हुए भी स्वभावतः शुद्ध अथवा शुभ्र, द्विज = ब्राह्मण या दाँतों के समूहों से

व्याप्त मुख है। एवं ये स्तनरूपी दोनों घट जीवन्मुक्तों अथवा मोतियों के सतत निवास-स्थान हैं। हे कृशाङ्गि ! इस प्रकार वैराग्य के साधनों से पूर्ण अथवा प्रसन्न भी तुम्हारा शरीर हम लोगों को विरागी नहीं बनाता, प्रत्युत अनुरागी= संभोगाभिलाषी ही बनाता है ॥ १२ ॥

मुग्धे ! धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ १३ ॥

१३—नारी केवल गुण से चित्त को वेध लेती है

कैसा हुनर धनुषविद्या का, मुग्धे, तुमको आता है।
चित्त वेधती केवल गुण* से, बाण न चलने पाता है ॥

हे सुन्दरि ! तुम में यह कौन-सा अपूर्व अर्थात् अद्भुत धनुर्धारी का गुण है ? जिस अपूर्वता से तुम तरुणों के हृदयों को गुणों (ज्या, डोरी) द्वारा ही बेधती हो, बाणों से नहीं। धनुर्धारी बाणों को धनुष पर चढ़ाकर उनके द्वारा दूसरों का वेध करते हैं किन्तु तुम तो बाणों को अपेक्षा न कर गुणरूपी मौर्वी से ही दूसरों के हृदयों को वेधा करती हो—यही अद्भुतपना तुम में है ॥ १३ ॥

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु ।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ १४ ॥

१४—बिना मृगनयनी संसार अन्धकारमय है

यद्यपि चमक रहे तारागण, चन्द्रदेव कर रहे प्रकाश।
दीपक भी है, मणियाँ चमकें, अग्नी करती तिमिर विनाश ॥
पर जग अन्धकारमय भासै, प्रिया-मिलन जब आस न हो।
सब प्रकाश निष्फल हो जाते, जब मृगनयनी पास न हो ॥

दीपक के, अग्नि के, ताराओं के, सूर्य के तथा चन्द्रमा के रहते हुए भी हरिण के बच्चे के समान चंचल नेत्रवाली सुन्दरी के बिना यह जगत् मेरे लिए अन्धकारमय हो रहा है। तात्पर्य उसके बिना सर्व शून्य-सा लगता है ॥ १४ ॥

---

* श्लेषालङ्कार (१) गुण = प्रत्यञ्चा, (२) गुण = चतुराई।

उद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते
रागाधिष्ठितमोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम् ।
सौभाग्याक्षरमालिकेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं
मध्यस्थाऽपि करोति तापमधिकं रोमावलिः केन सा ॥१५॥

१५—युवती का आकर्षण (५)

भले देंय मेरे मन पीड़ा, ऊँचे पुष्ट पयोधर दोय।
चंचल नेत्र भृकुटि सँग डोलें, अथवा अधर प्रेममय होय॥
पर मध्यस्थ रोम जो अवली, स्मर विरची निज कर से आप।
लेख श्रेष्ठ सौभाग्य सरीखी, हाय, रही दे क्यों संताप ?

ये तुम्हारे उभरे हुए स्तन अत्यन्त वर्तुल (गोल) अथवा उन्मार्गगामी हैं, ये दोनों नेत्र विलास से घूमनेवाले अथवा चंचल हैं, और भौंहें भी संकेत आदि में लीन होने से चपल अथवा अस्थिर हैं, और यह ओष्ठ-पल्लव अर्थात् अधरोष्ठ ललाई अथवा मत्सरता से पूर्ण है, अतः ये सब मन को भले ही पीड़ित करें; किन्तु कामदेव ने स्वयं अपने हाथ से लिखी सौभाग्य (सौन्दर्य) के अक्षरों की पंक्ति के समान भासमान यह रोम-राजि किस कारण से मध्यप्रदेश अथवा मध्यस्थ (तटस्थ) को अत्यन्त सन्ताप दे रही है। दुर्जनों का दूसरों को कष्ट देना स्वभाव है, परन्तु सज्जन क्यों कष्टदायक हो रहा है—यह ज्ञात नहीं होता ॥ १५ ॥

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः ।
कराभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ १६ ॥

१६—युवती का आकर्षण (६)

चन्द्रकान्त सा मुखड़ा जिसका, महानील से केश-समूह ।
पद्मराग से करतल जिसके, क्या रमणी रत्नों का व्यूह ?

चन्द्र के समान सुन्दर अथवा चन्द्रकान्त मणिरूप मुख से अत्यन्त काले अथवा इन्द्रनील (नीलम, सिंहल द्वीपोत्पन्न रत्नविशेष) रूप केशों से, कमल की-सी लालिमा धारण करनेवाले अथवा पद्मराग (लाल) रत्न रूप हाथों से वह (कामिनी) मानो रत्नस्वरूप ही शोभती थी ॥ १६ ॥

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता ।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा ॥ १७ ॥

१७—युवती का आकर्षण (७)

पुष्ट पयोधर गुरु ग्रह जानो, मुख से चन्द्र सूर्य आभास।
लाल चरण हैं मन्द शनी से, क्या रमणी ग्रहगण का वास ?

दुर्भर अर्थात् अत्यन्त पुष्ट अथवा देवगुरु (बृहस्पति) रूप स्तनभार से, प्रकाशवान अथवा कान्ति या सूर्यस्वरूप मुखरूपी चन्द्र से, मन्द मन्द चलनेवाले अथवा शनैश्चर-स्वरूप चरणों से वह सुन्दरी मानो ग्रह-स्वरूप हो शोभती थी ॥ १७ ॥

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं च हारि
वक्त्रं च चारु तव चित्त ! किमाकुलत्वम् ।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ १८ ॥

१८—बिना पुण्य सुन्दर स्त्री नहीं मिलती

पुष्ट पयोधर यदि कान्ता, जंघा मनहारी ।
यदि है आनन रुचिर, चित्त क्यों व्याकुल भारी ॥
मन में है जो चाह, पुण्य क्यों नहीं कमाते ?
बिना पुण्य इच्छित फल-हाथों कभी न आते ॥

रे मन ! उस तरुणी के स्तन यदि अत्यन्त पुष्ट या एक दूसरे से सटे हुए हैं और जघन (स्त्री-कटि का पुरो भाग) यदि मनोहर है एवं मुख भी सुन्दर है तो तुमको क्यों व्याकुलता (घबड़ाहट) है ? तुमको यदि उनको (स्तनादि की) चाह है तो तू पुण्य अर्थात् सत्कर्म कर। क्योंकि अभिलाषाएं बिना पुण्यों के पूर्ण नहीं होतीं ॥ १८ ॥

इमे तारुण्यश्रीनवपरिमलाः प्रौढसुरत-
प्रतापप्रारम्भाः स्मर-विजय-दान-प्रतिभुवः ।

चिरं चेतश्चोरा अभिनवविकारैकगुरवो
विलासव्यापाराः किमपि विजयन्ते मृगदृशाम् ॥१९॥

१९—युवती का आकर्षण (८)

स्मर को विजय करानेवाली, गुरु श्रेष्ठ चित-चोर-विकार।
इठलाहट मतवाली क्या है ? रति विलास ही का शृङ्गार ॥
सुन्दर परिमल यौवन श्री हैं, मकरध्वजकी छटा अनूप।
ऐसी क्रीडाएँ मृगनयनी, बढ़ती हैं आश्चर्य स्वरूप ॥

यौवन की श्री के नवीन परिमल स्वरूप प्रचण्ड रति के सामर्थ्य के प्रारम्भ रूप, कामदेव को विजय दिलाने में मध्यस्थ रूप, बहुत समय तक चित्त को चुरानेवाली, यौवन के नवीन विकार (भय, कंप, अनुकरण आदि) के एकमात्र गुरु-स्वरूप ये मृगनयनी की विलास की चेष्टाएं अवर्णनीय तथा सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१९॥

प्रणयमधुराः प्रेमोद्गारा रसाश्रयतां गताः
फणितिमधुरा मुग्धप्रायाः प्रकाशित-सम्मदाः ।
प्रकृतिसुभगा विस्रम्भार्द्राः स्मरोदयदायिनो,
रहसि किमपि स्वैरालापा हरन्ति मृगीदृशाम् ॥२०॥

२०—कान्ता के आलाप का एकान्त में सुख

छप्पय

प्रीति पूर्ण होने से मीठा, प्रगटा प्रेम सुरस बरसाय।
कर्णमधुर, स्वर से सुखदायक, आनँद का प्रकाश दिखलाय ॥
सुन्दर लगता है स्वभाव से, डूबा हुआ अमी-विश्वास।
मृगनयनी आलाप अलग में, कामदेव छलकाता खास ॥
अकथनीय सुख पाइये, जब ये तन मन व्याप्त हो।
भाग्यशील नर जानिये, जिसको यह सुख प्राप्त हो ॥

प्रेम विशेष से मधुर, स्नेहपूर्ण वचनवाले, रस का अवलम्बन लेनेवाले, संदर्भ विशेष से मृदुल, सुकुमारता से प्रायः भरे, हर्ष को जनानेवाले, स्वभावतः सुन्दर विश्वासपूर्ण, काम को उत्पन्न करनेवाले मृगनयनियों के एकान्त में स्वच्छन्दता पूर्वक (नर्मोक्तियाँ) कुछ भी अर्थात् सर्वस्व को हर लेती हैं ॥ २० ॥

(संभोग-वर्णन)

विश्रम्य विश्रम्य वन-द्रुमाणां
छायासु तन्वी विचचार काचित् ।
स्तनोत्तरीयेण करोद्धृतेन
निवारयन्ती शशिनो मयूखान् ॥ २१ ॥

२१—एक स्त्री अंचल से चाँदनी रोकती हुई गई

ठहर ठहर कर वृक्ष छाँह में, गई एक बाला सुकुमार।
निज अंचल को उठा हाथ से, बचा चन्द्र प्रगटा शृङ्गार ॥

सोई कृशाङ्गी वन में हाथ से ऊपर उठाये हुए स्तन के आवरण-पट (आँचल) से, विरही को सन्तापदायक चन्द्रमा की किरणों को निवारण करती अर्थात् रोकती हुई गयी ॥२१॥

अदर्शने दर्शनमात्र-कामा दृष्ट्वा परिष्वङ्ग-सुखैक-लोला ।
आलिङ्गितायां पुनरायताक्ष्यामाशास्महे विग्रहयोरभेदम् ॥२२॥

२२—स्त्री-दर्शन के पश्चात् आलिङ्गन की और उसके पश्चात् उसे न छोड़ने की इच्छा।

जब मिलना था कठिन—चाह तब रही एक केवल दर्शन।
पर दर्शन कर प्राप्त, चाह—हो जाती है प्रेमालिङ्गन ॥
प्रेमालिङ्गन चन्द्रमुखी से, जिस क्षण में हो जाता है।
अब कदापि जाये न छूट कर, मन में यही समाता है ॥

स्त्री पति के न दिखाई पड़ने पर केवल दर्शन मात्र की इच्छा करती है और देखने के बाद आलिङ्गन रस के लिए चञ्चल हो उठती है। विशालनयनी का आलिङ्गन करते हुए हम लोग दोनों (स्त्री-पुरुषों के) शरीरों का एक हो जाने अर्थात् भिन्नता न मालूम पड़ने की आशा करते हैं ॥२२॥

मालती शिरसि जृम्भणं मुखे,
चन्दनं वपुषि कुङ्कुमाविलम् ।

वक्षसि प्रियतमा मदालसा,
स्वर्ग एष परिशिष्ट आगमः ॥ २३ ॥

२३—सच्चा सुख प्यारी का संग है

कली-मालती माला माथे, जल्दी हो खिलनेवाली।
तन चर्चित केसरिया चन्दन, उर लिपटी हो मतवाली॥
यही स्वर्ग है सच्चा देखो, बाकी कहैं बढ़ाकर लोग।
बिना गोद प्यारी बिठलाये, व्यर्थ समझना सब उद्योग॥

मस्तक पर विकसित होनेवाली मालती-पुष्पमाला, शरीर पर केसर मिला हुआ चन्दन और हृदय पर मद से आलस्यवाली प्रियतमा यह समुदाय ही, इन सबका एक साथ होना ही, मुख्य स्वर्ग (सुख स्थान) है। इसके अतिरिक्त शास्त्रोक्त स्वर्ग अज्ञात होने से गौण (अप्रधान) हैं॥ २३॥

प्राङ्मामेति मनागनागतरसं जाताभिलाषं ततः
सव्रीडं तदनु श्लथोद्यममथ प्रध्वस्त-धैर्यं पुनः।
प्रेमार्द्रं स्पृहणीयनिर्भररहः क्रीडाप्रगल्भं ततो
निस्सङ्गाङ्गविकर्षणाधिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥ २४ ॥

२४—कुल युवती का प्रेम धन्य है

छप्पय

प्रथम क्रोध के भाव दिखा, कर देना नाहीं।
फिर अभिलाषा जता, स्वयं करना गुमराही॥
लज्जित हो ढीला कर—तन को धैर्य छुड़ाना।
कुल युवती का प्रेम धन्य, अतिशय मन भाना॥
प्रेममग्न एकान्त में, क्रीड़ा चतुराई दिखा।
हो निर्भय अँग खींचना, वांछनीय आनंद चखा॥

आरम्भ में थोड़ा-थोड़ा "नहीं, मत" इत्यादि निषेध वचन द्वारा अनुराग-विशेष न उत्पन्न होनेवाला, तदनन्तर उत्पन्न अभिलाषावाला, बाद लज्जोत्पादक, फिर शरीर को शिथिल करनेवाला और धैर्य को नष्ट करनेवाला, फिर प्रेम से सान्द्र अतएव अभिलषित, गाढ़, एकान्त की क्रीडाओं से प्रौढ़ और उसके

बाद निःसंकोच शरीरावयव मर्दन से अधिक सुखकर ऐसा कुलीन स्त्रियों का रत (नर्मक्रीडा) बहुत ही सुन्दर होता है ।। २४।।

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम् ।
उपरि सुरतखेदस्विन्नगण्डस्थलाना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ।। २५ ।।

२५—स्त्री-भोग भाग्यवान नर पाते हैं (१)

वक्षस्थल आ पड़ी, केश—खुल रहे, गन्ध मन भाया ।
खोले कुछ कुछ नेत्र, थकी, श्रमबिन्दु कपोलों आया ।।
अधरामृत ऐसी कान्ता के, भाग्यवान नर पीते ।
सुरत खेद को मिटा, मना—आनन्द, जगत में जीते ।।

कुछ भाग्यशाली पुरुष ही पुरुषायित सुरत के समय हृदय पर आरूढ़ होने-वाली, सुरत वेग से ढीले पड़े संयत केशवाली लज्जा के कारण मीलित (बंद) नेत्रवाली तथापि उत्सुकतावश अर्धखुली आँखवाली, पुरुषायित सुरत के कारण उत्पन्न श्रमजन्य स्वेद से आर्द्र गण्डस्थलवाली, वधुओं के अधर-मधु का पान करते हैं ।। २५ ।।

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनु संविदं भाति ।
मिथुनैर्मिथोऽवधारितमवितथमिदमेव कामनिर्वहणम् ।।२६।।

२६—स्त्री-भोग भाग्यवान नर पाते हैं (२)

आलस भरे नेत्रवालों को, मिलता है जो रस अनुभूत ।
नर-नारी दोनों का उससे, रति-पुरुषार्थ लीजिये कृत ।।

सुखाधीन होने से किंचित् २ नेत्रों को मीलित करनेवाले अर्थात् मूँदनेवाले युवाओं को जो नर्मक्रीडा का आनन्द ज्ञान के अनन्तर ज्ञात होता है, यही वस्तुतः कामदेव का अथवा पुरुषार्थ-चतुष्टयान्तर्गत कामनामक पुरुषार्थ का स्थापन या उज्जीवन है—ऐसा रसिक स्त्री-पुरुषों ने आपस में निश्चित किया है ।। २६ ।।

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः ।
तदपि च न कृतं नितम्बिनीनां
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा ॥ २७ ॥

२७–वृद्धावस्था में नर-नारी को काम से पीड़ित कर ब्रह्मा ने अनुचित किया।

अति ही अनुचित किया विधाता, वृद्ध मनुज दे काम विकार।
यौवन ढली नारि रति इच्छा, वेजा बहुत, न डाली मार ॥

इस संसार में पुरुषों को वृद्धावस्थाओं में भी जो कामदेव के विकार अर्थात् कामवासनाएँ उत्पन्न की गईं—यह अयोग्य है और मर्यादा से भी बाह्य है। इसी प्रकार नितम्बिनियों अर्थात् स्त्रियों का सुरत अथवा जीवन स्तन-पतन तक नहीं किया वह भी अनुचित और मर्यादा रहित है ॥२७॥

राजंस्तृष्णाम्बुराशेर्नहि जगति गतः कश्चिदेवावसानं
को वाऽर्थोऽर्थैः प्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे ।
गच्छामः सद्म यावद्विकसितनयनेन्दीवरालोकिनीना-
माक्रम्याक्रम्य रूपं झटिति न जरया लुप्यते प्रेयसीनाम् ॥२८॥

२८—स्त्री तभी तक प्यारी लगती है जब तक वृद्धावस्था उसका रूप न बिगाड़ दे

छप्पय

देह बीच गल गई जवानी, भरी हुई अनुराग बहार।
इससे महाराशि धन की है, हमको नृपति नहीं दरकार ॥
बदन प्रिया भी तब तक प्यारा, जरा न जब तक करे तबाह।
अभी कुमुद अरु कमल नेत्र से, मेरी देखे निसदिन राह ॥
पास प्रिया बस जायँगे, जब तक वो सुकुमार है।
तृष्णासागर थाह क्या ? कोइ न पाई पार है ॥

हे राजन् ! इस लोक में कोई भी पुरुष तृष्णा अर्थात् धन की इच्छा (चाह)

रूपी समुद्र के पार नहीं गया। अपने शरीर से अनुराग या संभोग की इच्छा के जनक यौवन के निकल जाने पर संचित बहुत से धनों से क्या काम ? इसलिए हम लोग घर जायेंगे। क्योंकि जरा अर्थात् बुढ़ापा जब तक कि विकसित नील कमल के समान नयनों से देखनेवाली प्रियतमाओं के रूप (सौन्दर्य) को बार-बार आक्रमण कर शीघ्र ही न हर ले। स्त्रियों के तारुण्यमूलक सौन्दर्य-काल में ही घर जाना योग्य है, अनन्तर तो व्यर्थ है ॥ २८ ॥

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःखसम्प्राप्तिहेतु-
र्मोहस्योत्पत्तिबीजं जलधरपटलं ज्ञानताराधिपस्य ।
कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्ट-दोष-प्रबन्धं
लोकेऽस्मिन्नह्यनर्थव्रजकुलभवनं यौवनादन्यदस्ति ॥ २९ ॥

२९—नवयौवन से बड़ा अनर्थ का स्थान नहीं

परमधाम है जगत राग का, शतशः नरक-दुःख दिखलाय ।
यही बीज जो मोह उगावे, हो घन ज्ञानचन्द्र ढँक जाय ॥
परम मित्र है कामदेव का, दोष बहुत प्रगटै संसार ।
नहीं बड़ा यौवन से कोई, अनर्थ का अनुपम भण्डार ॥

मात्सर्य अथवा प्रेम का मुख्य भवन, अनेकों नरकों में मिलनेवाली तीव्र पीड़ाओं की प्राप्ति का कारण, मोह अर्थात् अन्याभिलाष का मूल बीज, ज्ञानरूपी चन्द्रमा के लिए प्रतिबन्धक रूप मेघ समूह, कामदेव का मुख्य मित्र, नाना प्रकार के स्पष्ट दोषों को प्रकटित करनेवाला यौवन है। अतः इस संसार में यौवन के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु अनेक अनर्थों की उत्पत्ति का घर नहीं है। अर्थात् जवानी ही सब अनर्थों की जड़ है ॥ २९ ॥

शृङ्गारद्रुमनीरदे प्रसृमरक्रीडारसस्रोतसि
प्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरवाङ्मुक्ताफलोदन्वति ।
तन्वीनेत्रचकोरपावणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ
धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने ॥ ३० ॥

३०—नवयौवन में भी जिसको नीच विकार न हों वह पुरुष धन्य है

छप्पय

द्रुम समूह शृङ्गार सींचता, क्रीडारस का स्रोत प्रधान।
प्यारा भाई कामदेव जो, मुक्ता चतुर वचन की खान॥
कामिनि-नेत्र-चकोर-चन्द्र है, सुख समृद्धि लक्ष्मी भण्डार।
नव यौवन पा ऐसा मन में, जिसके उपजे नहीं विकार॥

युवक धन्य वह जानिये, सब युवकों के बीच।
यौवन मद का काल पा, चलन न भावे नीच॥

शृङ्गाररूपी वृक्ष के लिए मेघस्वरूप अर्थात् पोषक, फैलनेवाले क्रीडारूपी रस के लिए प्रवाह रूप अर्थात प्रवर्तक, कन्दर्प के प्रिय बन्धु अर्थात् सहायक, चातुर्यपूर्ण वचनरूपी मौक्तिकों के लिए आधारभूत समुद्र स्वरूप, विलासिनियों के नयन रूप चकोरोंके लिए पूर्णिमाके चन्द्र के समान आह्लादक, सौन्दर्य-सम्पत्ति के निधान (निधि) रूप, नवीन यौवन के प्राप्त होने पर कोई ही विरला महात्मा भाग्यशाली पुरुष काम-विकार को नहीं प्राप्त होता। अर्थात् काम-विकार सभी को प्राय: सताता है॥ ३०॥

संसारेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभवन-द्वारसेवाकलङ्क-
व्यासङ्गव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः।
यद्येताः प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः
प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाः स्तनभरविनमन्मध्यभाजस्तरुण्यः॥३१॥

३१—घर में कान्ता बैठी बाट देख रही है ऐसा ध्यान कर मनुष्य कष्टों को झेल लेता है

छप्पय

ऐसा कौन विमल मति मानव, सेवा का कलङ्क लेकर।
अकुलाता जो दुष्ट नृपति घर, किसी प्रकार धैर्य को धर॥
कारण यही सहारा उसका, उदित चन्द्रमुख मदमाती।
कांचीझुन झुन करती जिसकी, कटि स्तन भार झुकी जाती॥

ध्यान चक्षु से देखता, गृह में जोहति बार।
मृगनयनी शोभावती, मोहि बिनु नहीं करार॥

इस असार संसार में उदित होनेवाले चन्द्रमा की कान्ति की राशियों को धारण करनेवाली, कमलतुल्य नेत्रवाली, बजनेवाले घुँघुरुओं से युक्त करधनी रूप अलङ्कार से भूषित, स्तनों के भार से झुकनेवाले मध्य भाग से सुशोभित, सुन्दरियाँ यदि न होतीं तो निर्मल बुद्धिवाले अर्थात् बुद्धिमान (विद्वान) लोग कुत्सित राजाओं के द्वारपालों के अनुवर्तन रूप कलङ्क में अत्यासक्ति से नष्ट धीरजवाले अपने मन को कैसे ठीक-ठीक बनाये रखते। बुद्धिमान भी कष्टकारक राजसेवादि तरुणियों के मनोरंजन के लिए ही करते हैं ॥ ३१ ॥

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धावरुग्णद्रुमे
गङ्गाधौतशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि।
कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनं म्लानं मनस्वी जनो
यद्वित्रस्तकुरङ्गशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥३२॥

३२—जब घर में स्त्री आ जाती है तो स्वतन्त्र मनुष्य दीनभाव प्रकट करने लगता है

छप्पय

सिद्ध लोग जहँ ध्यान लगाते, बैठे आसन कन्दर बीच।
साधारण पाषाण जहाँ के, गंगाजल से जाते सींच॥
महादेव का नन्दी जहँ पर, विचरण करता है स्वच्छन्द।
वृक्षों को है रगड़ गिराता, लगा जोर अपने स्कन्ध॥
वासी ऐसी भूमि का, दीन वचन मुख से कहे।
काम अस्त्र ले कामिनी, आकर जब घर में रहे॥

सिद्ध या तपस्वियों के द्वारा जिसकी गुहा सेवित की जाती है और शिवजी के वाहनभूत, वृषभ अर्थात् नन्दो के स्कन्ध से जहाँ के वृक्ष भग्न होते हैं एवं गङ्गा-जल द्वारा जहाँ की चट्टानें धोई गई हैं, ऐसी श्रेष्ठ हिमालय पर्वत की चोटी (शिखर) के रहते कौन स्वाभिमानी पुरुष अपने मस्तक को कुत्सित नृपों के चरणों पर प्रणाम के द्वारा मलिन अतएव महत्त्व (गौरव) हीन करता? यदि भयभीत हरिण के छौनों के समान चंचल नेत्रवाली, कामदेव का जगद्विजयी अस्त्र (बाण) रूप स्त्रियाँ न होतीं। चंचलनयनियों के कारण मानी पुरुषों को

दुष्ट धनिकों के सामने सिर झुकाना पड़ता है अन्यथा उनके लिए पर्वत ही उत्तम शरण है ॥ ३२ ॥

संसार ! तव पर्यन्तपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि ते मदिरेक्षणाः ॥ ३३ ॥

३३–कामिनी बीच में न होती तो संसार पार कर जाना कठिन न था

नहीं कठिन था हमको जाना, पार तुम्हारे हे संसार ।
मदनाक्षी ये कामिनि निर्दय, बनी न होतीं भित्त दीवार ॥

ऐ संसार ! तुम्हारा अन्तिम छोर या आखिरी सीमा बहुत दूर नहीं है अर्थात् समीप ही है । यदि, बीच में पार करने में अशक्य महानदियों की तरह मदिरा से पूर्ण नेत्रवाली ये सुन्दरियाँ दुस्तर न होतीं । स्त्रियाँ संसार को पार करने में प्रतिबन्धक हैं, उनका त्याग करने पर कल्याण हो सकता है ॥ ३३॥

(विरक्तयनुरक्तिरूप-पक्षद्वयनिरूपणम्)

दिश वनहरिणीभ्यो वंशकाण्डच्छवीनां
कवलमुपलकोटिच्छिन्नमूलं कुशानाम् ।
शकयुवतिकपोलापाण्डुताम्बूलवल्ली-
दलमरुणनखाग्रैः पाटितं वा वधूभ्यः ॥ ३४ ॥

३४–कान्ता जन को उत्तम ताम्बूल प्रिय है

वनमृगियों को प्यारा जैसे, हरित कटा कोमल कुश भाग ।
कान्ता जन वैसे रखती हैं, ताम्बूलों से अति अनुराग ॥
पर हों वे ऐसे पीले, शक युवती के जैसे गाल ।
अरुण नखों वाली तोड़े हों, यत्नपूर्वक खूब सँभाल ॥

ऐ मनुष्य ! तपस्या करते समय बाँस के अंकुर के समान छविवाले अर्थात् हरे, पत्थर की कोर से कुचने के कारण जड़ कट जाने से मुलायम हुए कुशों के कवल वन में हरिणों को खाने के वास्ते दो । अथवा संसरण के समय लाल-लाल नखों के अग्र से फाड़े हुए अतएव शक देश की स्त्रियों के कपोल के समान चारो ओर से धवल ताम्बूली दल अर्थात् पान वधुओं को रसिकता के लिए दो ॥३४॥

असाराः सर्वे ते विरतिविरसाः पापविषया
जुगुप्स्यन्तां यद्वा ननु सकलदोषास्पदमिति ।
तथाप्येतद्भूमौ नहि परहितात् पुण्यमधिकं
न चास्मिन् संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ।। ३५ ।।

३५—परोपकार से बड़ा पुण्य और कमललोचनी से अधिक रम्य वस्तु संसार में नहीं है

विषय भोग हैं सब असार, बाधक वैराग्य इन्हें जानों।
पूर्ण त्याग इनका कीजे—जो, दोषों के उद्गम मानों ।।
पर सब में है श्रेष्ठ पुण्य, यह—जग में करना पर उपकार।
और नहीं है वस्तु रम्यतर, कंज-लोचनी से संसार ।।

ये शब्दादि अथवा स्रक्चन्दनादि वस्तुएँ पापजनक होने से परिणाम में असार हैं अथवा सम्पूर्ण महान् दोषों के स्थान हैं—इस प्रकार संसार को निन्दा भले हो करिए; तथापि (वैराग्य पक्ष में) इस भूमि पर परहित अर्थात् परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है। (अनुराग पक्ष में) इस संसार में कमलनयनियों से बढ़कर दूसरी वस्तु सुन्दर नहीं हैं ।। ३५ ।।

*एतत्कामफलो लोके यद् द्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरिव संगमः ।।

(एकचित्तता समागम का मुख्य फल है)

एक चित्त कर देय समागम, मुख्य मदनफल ये मानो।
अन्यासक्त रहैं यदि दम्पति, वह तो शव-संगम जानो ।।

स्त्री-पुरुष दोनों का एकचित्त हो जाना ही संसार में काम का वास्तविक फल पाना है, दोनों का चित्त भिन्न-भिन्न विषयों में लगे रहने पर भी जो रति की जाती है वह तो मानों दो निर्जीव देहों का संमिलन है।

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्य-
मार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।

---

* इस चिह्न से युक्त श्लोकों को सर्वत्र प्रक्षिप्त श्लोक समझें ।

सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणा-
मुत स्मरस्मेर-विलासिनीनाम् ॥ ३६ ॥

३६—मदमाती स्त्रियाँ सेवनीय हैं

कर विचार निष्पक्ष बताओ, सेवनीय इन दो में क्या ?
उत नितम्ब*भूधर सुन्दर हैं, इत नितम्ब सुन्दरी तिया ॥
मद उमङ्ग से जो मुसकाती, रमण-विलासिनि मदमाती।
पण्डित गण, तजे मत्सरता को, कहो हाथ धर के छाती ॥

आर्यो! ईर्ष्या या पक्षपात को दूर कर कर्तव्य कर्म का विचार कर मर्यादा के साथ यह कहिए:—क्या पहाड़ों के नितम्ब अर्थात कटि-प्रदेशों (गुहा आदि) का आश्रय करना चाहिए अथवा कामावेग से मुसकाती विलासिनियों के कटिदेश का सेवन करना चाहिए। (वैराग्य पक्ष में) तपस्या करनी हो तो पर्वताश्रय लेना चाहिए और (अनुराग पक्ष में) स्त्री-नितम्ब-सेवन करना उत्तम है ॥ ३६ ॥

संसारे स्वप्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां
तत्त्वज्ञानामृताम्भःप्लवललितधियां यातु कालः कथञ्चित् ।
नो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनघनाभोगसम्भोगिनीनां
स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलीलोद्यमानाम् ॥ ३७॥

३७— स्वप्न-समान चञ्चल संसार में योग और भोग दो ही गति हैं

चञ्चल स्वप्न समान अनोखा, बना हुआ है ये संसार।
पण्डित प्रवर, गती हैं दो ही, इनमें लो मारग निरधार ॥
या तो नित्य नहाओ धँस कर, तत्त्वज्ञान के जल में जाय।
या फिर ललना मतवालिन सँग, लखो कुतूहल मस्त स्वभाय ॥

स्वप्न की स्थिरता के समान स्थिरतावाले अर्थात् मिथ्यास्वरूप तथा परिणाम में चंचल अर्थात् अस्थिर इस संसार में विद्वानों की दो ही स्थितियाँ

---

*श्लेषालंकार (१) नितम्ब=पर्वत का मध्य भाग।
(२) नितम्ब=स्त्री का कटि भाग।

हैं। (वैराग्यावस्था में) यथार्थ-संसार-स्वरूप-रूप ज्ञानमृत के प्रवाह में बहने से सुन्दर (वास्तविक) बुद्धिवालों का समय किसी प्रकार अर्थात् अतीव कठिनाई में व्यतीत होता है—यह एक अवस्था हुई। यदि ऐसा न हो तो (अनुराग दशा में) स्तन और घन (विपुल) जघन के विस्तार में संभोग की इच्छावाली सुन्दर स्त्रियों के स्थूल काम-मन्दिरों में आच्छादन किए हुए करतल के स्पर्श रूप लीला के लिए प्रयत्न करनेवाले अर्थात् स्मरमन्दिर का स्पर्शसुख अनुभव करनेवाले उन सज्जनों का समय आनन्द से बीतता है—यह दूसरी अवस्था है ॥ ३७ ॥

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापहारिणि वारिणि ।
स्तनद्वये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि ॥ ३८ ॥

३८—या तो गंगातट पर वास करे या फिर कामिनियों के पास रहे

कै तो करिये वास जाय, गंगा-तट निश्चल ।
पापहरण जल पान किये, मति होवे निर्मल ॥
कै फिर रहिये पास, कामिनी के वक्षस्थल ।
हार लस दिलदार, चित्त—हरते कर छल बल ॥

(वैराग्य काल में) सब प्रकार के पापों को हरनेवाले श्री गंगाजी के जल में अर्थात् जल के समीप स्नान-पान द्वारा आश्रय होता है। अथवा (अनुराग काल में) मन हरनेवाले, मुक्ताहार से सुन्दर प्रतीत होनेवाले तरुणी के कुचद्वय का ही सहारा होता है ॥ ३८ ॥

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ॥ ३९ ॥

३९—या तो वन में वास करे या फिर कामिनियों के पास रहे

पुरुष योग्य सेवन हैं दो ही, बात बहुत रक्खा क्या सार ?
कै तो वन जा करे तपस्या, अरु खुलवाले स्वर्ग किवाड़ ।
कै फिर खेले यौवन लीला सुन्दरियों सँग मदमाती ।
नव कामिनी लालसावाली, खिन्न भार अपनी छाती ॥

यहाँ पर बहुत से युक्तिरहित कहे हुए अनर्थकारी वचनों से क्या लाभ ? इस संसार में पुरुषों को केवल सर्वदा इन (निम्नलिखित] दो का ही सेवन करना चाहिए। एक-(अनुरागावस्था में) नवीन मदलीला अर्थात् कामावेग-जन्य विलासों में अत्यन्त आसक्त, स्तन के भार से परिश्रान्त सुन्दरियों का यौवन अथवा द्वितीय (वैराग्य दशा में) वन सेवनीय है ॥ ३९ ॥

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाताल्लोकेषु सप्तस्वपि तथ्यमेतत् ।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ॥४०॥

४०—तरुणी सुख-दुःख दोनों का कारण है

बिना पक्ष सच सप्त लोक में बात कहूँ ये गुणकारी।
कान्ता से बढ़कर नहिं कोई वस्तु मनुज को मनहारी॥
फिर भी तरुणी ही को जग में, सबसे दुखदायी मानो।
कारण यही कष्ट की होती, तत्त्व बात यह पहिचानो॥

हे मनुष्यो ! मैं सच कहता हूँ; पक्षपात से नहीं। सातो लोकों में यह बात सत्य है कि (अनुरागावस्था में) नितम्बवती स्त्रियों के अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ वास्तविक सुन्दर नहीं है। साथ ही (वैराग्य दशा में) उनके सिवाय कोई दूसरी वस्तु दुःख का मूल कारण नहीं है। अर्थात् सुख तथा दुःख दोनों का कारण भिन्न-भिन्न दृष्टियों से सुन्दरियाँ ही हैं ॥ ४० ॥

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युन्नम-
त्पीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति ।
दृष्ट्वा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानपि
प्रत्यक्षाशुचिभस्त्रिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितम् ॥ ४१ ॥

४१—नारी रूप के महामोह में पण्डित भी फँस जाते हैं

कमल नयन कान्ता के भारी—श्रोणी, पुष्ट पयोधर देख।
मोहित बुध आनन्द मनाते, अरु रमते, स्तुति करें विशेष॥
पर यथार्थ में अशुचि पिटारी, समझो नारी रूप सुजान।
महामोह के चक्कर में पड़, फँसते पण्डित बन अनजान॥

युक्तायुक्त विचारशील विद्वान् भी (साधारणों की बात ही क्या ?) प्रत्यक्ष में अपवित्रता को जगानेवाली स्त्री को देखकर "यह सुन्दरी है, कमल-नयनी है, विपुल (पुष्ट तथा विशाल) नितम्बवती है, ऊपर उठते हुए, पुष्ट और उन्नत कुचवाली है, सुन्दर कमलमुखी है, और रमणीय स्मर-धनुष के समान तिरछी भ्रुकुटियोंवाली है"–इस प्रकार सोचता हुआ मतवाला होता है, प्रसन्न होता है, विलास करता है, अनेक प्रकार से उसकी स्तुति करता है। मूर्खता का यह दुर्व्यापार है, अत्यन्त आश्चर्य है ॥ ४१ ॥

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादकारिणी ।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ॥ ४२ ॥

४२—स्त्री का स्मरण, दर्शन और स्पर्श तीनों मोह में डालते हैं।
ऐसी नारी को प्यारी क्यों कहते हैं ?

सुमिरन से हो ताप, देखने-भर से मादकता चढ़ि जाय।
छूने से होवे बेहोशी, नारी क्यों प्यारी कहलाय ?

प्रवास में सादृश्य के कारण उसका स्मरण होने से वह सन्ताप (दुःख) का कारण होती है। दिखाई पड़ने पर उन्मत्त बना देती है। और यदि उसका स्पर्श किया जाय तो बुद्धिभ्रंश का कारण बन जाती है। ऐसी दशा में भला वह दयिता (प्रिया) ....कैसे...हो सकती है ॥ ४२ ॥

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा ।
चक्षुष्पथादतीता तु विषादप्यतिरिच्यते ॥ ४३ ॥

४३—स्त्री आँखों के सामने अमृत प्रतीत होती है परन्तु दूर जाकर विष हो जाती है

आँख सामने जब तक रहती, लगती है अम्मृत भरपूर।
पर विष से बढ़कर दुख देती, जा करके अपने से दूर ॥

वह (दयिता) जब तक आँखों के सामने रहती है तभी तक अमृत के समान मधुर है। जब आँखों से ओझल हो जाती है अर्थात् आँखों के सामने से दूर (हट) जाती है तब तो विष (जहर) से भी बढ़ जाती है अर्थात् प्राणों को कष्ट पहुँचानेवाली हो जाती है ॥ ४३ ॥

नामृतं न विषं किञ्चिदेतां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।
सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥ ४४ ॥

४४—अनुरक्त स्त्री सुधातुल्य पर विरक्त नारी विष है

अमृत, विष, नारी से बढ़कर, नहीं और हैं जग के बीच ।
जब अनुरक्त लता अमृत है, पर विरक्त विष वल्लरि नीच ॥

इस पृथुल नितम्बवाली सुन्दरी को छोड़कर न कोई अमृत है और न कोई विष ही है । जब वह अनुराग से पास में रहती है तब वही अमृत की लता है । प्रेम विहीन होने से दूर रहने के कारण वही विष की वल्लरी (लता) सी हो जाती है ॥ ४४ ॥

आवर्तः संशयानामविनयभुवनं पट्टणं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं
स्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिलोकस्य पाशः ॥४५॥

४५—स्त्री माया की डिबिया है, जीव फँसाने का फन्दा है

छप्पय

संशय भँवर, नगर साहस का, अविनय और दोष सोपान ।
अविश्वास अरु कपट सैंकड़ों, की मानो है लम्बी खान ॥
किसने यह स्त्री यन्त्र बनाया, छुड़ा स्वर्ग अरु नरक दिखाया ।
सुधा लपेटा विष भीषण है, प्राण देय नर इसको पाय ॥
माया की डिबिया बनी, धोखे नारि न आइये ।
जीव फंसाने के लिए फन्दा है बच जाइये ॥

सब प्रकार के सन्देहों का परिपाकरूप, अविनयों (उद्धतता) का लोक, साहस के कार्यों का नगर, राग-द्वेषादि दोषों की अक्षय निधि, सैकड़ों छल-कपटों से पूर्ण, अविश्वासों का क्षेत्र अर्थात् उत्पत्ति-स्थान, स्वर्ग में जाने के लिए रहनेवाले द्वार का विघ्नरूप (रुकावट करनेवाला), नरक नगरी का मुख्य प्रवेश-मार्ग, सब प्रकार की मायाओं (इन्द्रजालों) की पेटिका या सन्दूक,

अमृतमय विष अर्थात् बाहर से अमृत के समान प्रतीयमान विषरूप सब प्राणियों के लिए पाश (बन्धन) रूप यह स्त्रीरूपी यन्त्र किसने अर्थात् विधाता ने बनाया है ॥ ४५ ॥

नो सत्येन मृगाङ्क एष वदनीभूतो न चेन्दीवर-
द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गयष्टिः कृता ।
किन्त्वेवं कविभिः प्रतारितमनास्तत्त्वं विजानन्नपि
त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दो जनः सेवते ॥ ४६ ॥

४६—कवियों ने स्त्री की झूठी प्रशंसा की है जिसके कारण मूर्ख पुरुष बहकावे में आकर उसकी सेवा करते हैं

नहीं चन्द्र ले आनन विरचा, नहीं कमल के नेत्र बने।
नहीं स्वर्ण की देह बनाई, कविजन वृथा लगे कहने ॥
त्वचा, हाड़ अरु मांस बनीं, ये मृगनयनी निश्चय मानो।
कवियों के बहकावे से नर, मूर्ख करें सेवा जानो ॥

यह प्रत्यक्ष में दिखाई पड़नेवाला चन्द्रमा मृगनयनियों का वास्तविक रूप में मुख नहीं हुआ, न दो नीले कमल ही नेत्रद्वय हुए और न यह देहलता भी सुवर्णों से बनाई गई; किन्तु इस प्रकार कवियों द्वारा जिनका मन ठगा गया है ऐसे मूर्ख लोग सच्ची बात को अच्छी तरह जानते हुए भी त्वचा, मांस और हड्डी से बने कामिनियों के शरीर का सेवन करते हैं ॥ ४६ ॥

लीलावतीनां सहजा विलासा-
स्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ।
रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्ध-
स्तत्र भ्रमत्येव वृथा षडङ्घ्रिः ॥ ४७ ॥

४७—लीलावतियों का स्वभाव ही लीला करना है, परन्तु मूर्ख पुरुष अपने लिये भाव दिखाना समझता है और धोखा खाता है

लीलावतियों का स्वभाव से, लीला करना सहज विलास।
पर मूरख क्यों उत्तेजित हो, वृथा लखे अपना आभास ॥

जैसे नलिनी वन में जब, प्राकृत लाली के ढिग जाते।
अपने हित में समझ उसे, मोहित भौंरे धोखा खाते॥

विलासिनियों की लीलाएँ स्वाभाविक हैं वे हो मूर्ख के मन में भाती हैं। जैसे-कमलिनी की ललाई स्वाभाविक ही है, परन्त भौंरा उसपर व्यर्थ ही मँडराया करता है॥ ४७॥

*संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति॥

सुन्दर नारियों के आचरण (१)

दयाशील नर के उर में घुस, अवगुण उसमें कई भरें।
दिखा आचरण सुन्दर-लोचनि, क्या क्या लीला नहीं करें॥
मोहित करतीं, मस्ती लातीं बिडम्बना हैं करवातीं।
रमण करातीं, कभी झिड़कतीं अरु विषाद भी पहुँचातीं॥

ये सुन्दर नेत्रोंवाली रमणियाँ मनुष्यों के दयायुक्त हृदय में प्रविष्ट होकर उन्हें संमोहित करती हैं, मतवाला बना देती हैं, उनकी विडम्बना (उपहास) करती हैं, भर्त्सना करती हैं, (फटकारती हैं), रमण कराती हैं एवं विषाद दिलाती हैं—क्या नहीं कर डालती हैं।

यदेतत्पूर्णेन्दुद्युतिहरमुदाराकृति परं
मुखाब्जं तन्वङ्ग्याः किल वसति यत्राधरमधु।
इदं तत्किम्पाकद्रुमफलमिदानीमतिरसं
व्यतीतेऽस्मिन् काले विषमिव भविष्यत्यसुखदम्॥ ४८॥

४८—सुन्दर नारियों के आचरण (२)

राकाशशि छवि मन्द पड़ रही, कामिनि का मुख कमलनिहार।
अधरों में इस सुन्दर तन्वी, मधु का छलक रहा उपहार॥

बना हुआ इस क्षण तो हैं ये, मीठा जैसे फल किंपाक।
पर अति शीघ्र हलाहल होगा, मेरी चाह डालके खाक ॥

कृशाङ्गी का यह जो मुखरूपी कमल है वह पूर्णचन्द्र अर्थात् पूर्णिमा के चन्द्र की कान्ति को हरनेवाला अर्थात् तत्समान है और सुन्दर आकारवाला है तथा जिसमें अधरोष्ठ में मकरन्द या अमृत रहता है। वही यह मुखकमल इस समय आरंभ काल में अर्थात् जवानी में रस से भरे आम्रवृक्ष के फल के समान अत्यन्त रसपूर्ण है अथवा किम्पाक नामक वृक्ष के फल—जो आपात-मधुर एवं परिणाममें विपरीत है—के समान है। इस समय के व्यतीत हो जाने पर विष की भाँति दुखदायी हो जायगा ॥ ४८ ॥

उन्मीलत्त्रिवलीतरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्गपीनस्तन-
द्वन्द्वेनोद्गतचक्रवाकयुगला वक्त्राम्बुजोद्भासिनी।
कान्ताकारधरा नदीयमभितः क्रूराऽत्र नापेक्षते
संसारार्णवमज्जनं यदि तदा दूरेण सन्त्यज्यताम् ॥ ४९ ॥

४९—स्त्री कुटिल सरिता के समान है। मुक्ति-मार्ग प्राप्त करने के लिये इसका त्याग उचित है।

छप्पय

लसती सरित तरङ्ग, उदर त्रिवली में सुन्दर।
चकवाक युग बैठे हैं, बन पुष्ट पयोधर ॥
कमल सरीखा उज्ज्वल मुख, मोहित मन करता।
कुटिला कान्ता भास रही, जैसे वन सरिता ॥
जो नहिं चाहो डूबना, भवसागर में जाय कर।
दूर त्याग वनिता करो, मुक्ति-मार्ग अपनाय कर ॥

ऊपर उठनेवाली त्रिवली रूप तरङ्गों से पूर्ण, ऊँचे और पुष्ट स्तनयुगल के कारण चक्रवाक पक्षी का जोड़ा जिसमें उछल या तैर रहा है ऐसी, मुख-कमल से शोभनेवाली, क्रूरा अर्थात् सर्वथा कुटिल हृदयवाली अथवा चारों ओर से टेढ़ी प्रवाह (धारा) की गतिवाली सुन्दर रूपवाली अथवा स्त्री-रूपिणी यह नदी है यदि संसार-सागर में डूबना न चाहते हों तो दूर ही से इसका त्याग

करना उचित है। अन्यथा इसके (स्त्री या नदी के) आश्रय से समुद्र में डूबना ही निश्चित है ॥ ४६ ॥

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ ५० ॥

५०—स्त्री का कोई प्यारा नहीं

बातें करतीं इधर उधर कर-दृग बिलास ललचातीं मौन ।
तिसरे की है चाह लगी मन, कहौ नारि का प्यारा कौन ?

स्त्रियां किसी एक दूसरे के साथ बातचीत करती हैं, विलास अर्थात् हावभाव आदि के साथ दूसरे की ओर देखती हैं तथा मन में बसनेवाले किसी अन्य के विषय में सोचा करती हैं। फिर बताइये भला कि स्त्रियों का प्यारा कौन है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ५० ॥

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलम्
अतएव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ॥ ५१ ॥

५१—स्त्री की वाणी में अमृत और हृदय में विष रहता है

सुधा बसै कामिनि-वाणी में, उर में केवल हालाहल ।
इसीलिये कर अधर पान, नर मुष्टि मारते वक्षस्थल ॥

स्त्रियों के वचन में मधु रहता है, हृदय में तो केवल हलाहल विष ही रहता है। अतएव अधरामृत का पान किया जाता है और हृदय को मुष्टियों (मुक्कों) से ताड़न किया जाता है ॥ ५१ ॥

अपसर सखे ! दूरादस्मात् कटाक्षविषानलात्
प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः ।
इतरफणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधै-
श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥५२॥

५२—स्त्री विषधर सर्प के समान है जिसके भोग में ग्रसे मनुष्य की औषधि नहीं

स्वाभाविक विषधर है नारी, इसका फन विलास पहिचान ।
विष अग्नी रहती कटाक्ष में, बचना मित्र, न खोना जान ॥

औषधि और वैद्य मिल जाते, इसे सर्प को डस संसार।
भोग ग्रसा पर चतुर नारि जो, औषधि मन्त्र उसे बेकार॥

कोई अपने मित्र को समझाते हुए कह रहा है—हे मित्र! कटाक्षरूप विषाग्निज्वालावाले, स्वभावतः कुटिल, विलास की चेष्टारूप फणाओं को धारण करनेवाले, इस स्त्रीरूप सर्प से दूर ही से हट जाओ। क्योंकि दूसरे सर्प द्वारा काटा (डँसा) हुआ आदमी औषधों द्वारा स्वस्थ या नीरोग किया जा सकता है। क्योंकि मांत्रिक लोग अर्थात् मंत्र-तंत्र या झाड़फूंक करनेवाले ओझा प्रभृति गुणीजन भी चतुर स्त्रीरूप सर्प से काटे हुए व्यक्ति को छोड़ देते हैं अर्थात् ऐसे स्थान पर वे भी कुछ नहीं करते। कारण यहाँ उनका मणि-मंत्र-औषध आदि उपाय सफल नहीं होते॥ ५२॥

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण
स्त्रीसंज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ।
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य-
मत्स्यान् विकृष्य विपचत्यनुरागवह्नौ॥ ५३॥

५३—कामदेवरूपी धीवर स्त्रीरूपी वंशी से शिकार खेलता है

छप्पय

धीवर कामदेव की वंशी, भव समुद्र में है नारी।
अधर पान जिसमें चारा है, नर झख फाँसन हित डारी॥
खा चारा ज्यों मछली फँसती, अधर पान फँसते नर हैं॥
धीवर जाल कसे जाते हैं, कामदेव वश किंकर हैं॥

धीवर मछली भूनता, भट्ठी ऊपर सेक।
कामदेव भूने मनुज, प्रेम अग्नि उद्रेक॥

इस संसार-सागर में कामरूपी मछुवे ने स्त्रीनामक बडिश=मछली फँसाने का काँटा या बंसी को फैलाया है जिसके द्वारा वह शीघ्र ही कामिनी के अधर-रूपी मांस के लिए लालायित मनुष्यरूपी मीनों को खींचकर प्रेमाग्नि में भूनता है॥ ५३॥

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।
मा संचर मनःपान्थ ! तत्रास्ते स्मरतस्करः ।। ५४ ।।

५४—कान्ता के कुचरूपी दुर्गम पर्वतों में कामदेवरूपी बटमार बास करता है

कान्ता के वनरूपी तन में, कुच पर्वत हैं अगम अपार ।
हे मन यात्री उधर न जाना, कामदेव रहता बटमार ।।

हे मनरूपी यात्री ! कुचरूपी पर्वतों के कारण अप्रवेश्य, कामिनी के शरीररूपी दुर्गम मार्ग या वन में मत फिर या घूम । क्योंकि वहाँ कामरूपी लुटेरा है ।। ५४ ।।

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिना
नीलाब्जद्युतिनाऽहिना परमहं दष्टो न तच्चक्षुषा ।
दष्टे सन्ति चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेण धर्मार्थिनो
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य न हि मे वैद्यो नचाप्यौषधम् ।।५५।।

५५—मुग्धाक्षी की आँख के काटे पर वैद्य और औषधि का वस नहीं चलता

छप्पय

कामिनि आँख और विषधर में, गुण मिलते हैं लो पहिचान ।
अति चंचल, हैं तिरछे चलते, नील कंज से वपुः समान ।।
तेजस्वी दोनों बाँके हैं, अनायास करते हैं चोट ।
काट गिराते हैं जब नर को, मुर्दासा जाता है लोट ।।
मिलते हैं अहि दंश के, धर्म चिकित्सक सब कहीं ।
पर मुग्धाक्षी कटे को, वैद्य और औषधि नहीं ।।

बहुत लम्बे अथवा कान तक फैले हुए, चञ्चल-स्वभाववाले, टेढ़ी चाल चलनेवाले, बलवान् अथवा अति दिव्य, नील कमल की-सी कान्तिवाले या कृष्णवर्ण, भोग करनेवाले अथवा सर्प से मैं डसा नहीं गया किन्तु उस कामिनी के नेत्र से प्रत्येक दिशा में वैद्य (सर्प-विष दूर करनेवाले) धर्मार्थी अर्थात् परोपकार में लीन प्रचुरमात्रा में हैं । सुन्दरनयनी के द्वारा क्षणभर के लिए देखे गये मेरे लिए न कोई वैद्य है और न कोई औषधि ही है ।। ५५ ।।

इह हि मधुरगीतं नृत्तमेतद्रसोऽयं
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम् ।
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः
स्वहितकरणधूर्तैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥ ५६ ॥

५६—अभागी इन्द्रियाँ स्त्री की सुन्दरता में फँस गईं
कान लुभाये मधुर गीत में, आँखें देखि मनोहर नाच ।
स्वाद फँसी है जिह्वा डाइन, नाक लगी परिमल की जांच ॥
स्तन छू सुख त्वचा उठाती, स्वारथ रहीं इन्द्रियें साध ।
भटकातीं अरु ठगतीं मुझको, कैसी धूर्त करें अपराध ॥

इन्हीं कामिनियों में ही श्रोत्रेन्द्रियसुखकारी मधुर गान, यह नयनेन्द्रियानन्दकर नृत्य, यह रसनेन्द्रिय को स्वादाधिक्य देनेवाला रस अर्थात् अधरामृत, यह केसर-कस्तूरी घ्राणेन्द्रिय को आनन्दित करनेवाली चन्दन लेपन द्वारा सुगन्धि एवं त्वगिन्द्रिय को सुख पहुँचानेवाला कुचों का स्पर्श स्पष्ट प्रतीत होता है—इस प्रकार परमार्थ से हीन अर्थात् विषयासक्त, अपनी ही भलाई करनेवाली धूर्त इन पाँचों इन्द्रियों से भूलभुलैया में डाला गया मैं पूर्णरूप से ठगा गया । स्वहित साधनतत्पर श्रोत्रादि पांचों इन्द्रियों ने भुलावे में डालकर मुझे ठग लिया ॥ ५६ ॥

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः ।
भ्रमावेशादङ्गे कमपि विदधद् भङ्गमसकृत्
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥५७॥

५७—काम-विकार असाध्य रोग है, मृगी सा है
बार-बार तोड़े अङ्गों को मृगी रोग सा-काम विकार ।
दे दे भ्रम आँखें फिरवावे, ऐसा इसका कठिन खुमार ॥
नहीं मन्त्र चल सकता इस पर औषधि से यह साध्य नहीं ।
शान्तिपाठ शतशः कर डालो, क्या होता है शान्त कहीं ?

यह कामरूप अपस्मार (मिर्गी) रोग मंत्रसाध्य नहीं, औषधि द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता, अनेक प्रकार के सैकड़ों शान्तिक कर्मों से भी नष्ट नहीं हो पाता, मोह को उत्पन्न करने के कारण अथवा बुद्धिभ्रंशकर होने से शरीर (हाथ, पैर आदि अवयवों) में अनिर्वचनीय जडता (पटकना, छटपटाना आदि) को बार-बार करता हुआ दृष्टि को भ्रम में डालता है तथा चक्रवत् घुमाता है ॥ ५७ ॥

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ।
यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु राज्येत कः ॥ ५८ ॥

अध्याय (३) स्त्रियों से वैराग्य

५८—वेश्या की निन्दा (१)

छप्पय

मिले जन्म का अन्ध, कुरूपी, जराजीर्ण नर ।
वो होवे ग्रामीण, नीच कुल कुष्ठी पामर ॥
वेश्या देती सौंप, लोभवश सुन्दर तन को ।
मैला होवे जार, अरुचिकर चाहे मन को ॥
वल्ली विवेक काटती, शस्त्र लिये खर धार का ।
पुरुष कौन मतिमान जो प्रेमी ऐसी नारि का ॥

कौन विवेकी अथवा अविवेकी पुरुष जन्मान्ध और रोगादि द्वारा अथवा स्वभावतः विकृत मुखवाले तथा बुढ़ापे के कारण जीर्ण सर्वाङ्गवाले, एवं ग्रामीण (विलासादि से अनभिज्ञ), दुष्ट कुलोत्पन्न और गलत्कुष्ठवाले पुरुष को थोड़े से द्रव्य पाने की आशा से सुन्दर अपने शरीर को सौंपनेवाली, विवेकरूपी कल्पलता को काटनेवाली छुरी के समान, वाराङ्गना (वेश्याओं) पर अनुरक्त होगा ? अर्थात् ऐसी बाजारू स्त्रियों पर कोई भी अनुरक्त नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनविवर्धिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ ५९ ॥

५९—वेश्या की निन्दा (२)

कामदेव की ज्वाला गणिका, रूप ईंधन से बढ़ै प्रचण्ड ।
धन यौवन की आहुति देते, फँस कामी उसके पाखण्ड ॥

यह वेश्या सौन्दर्य रूप ईंधन से बढ़ाई गई कामाग्नि की ज्वाला ही है। जिसमें कामुक पुरुष अपने यौवन और धन की आहुतियाँ दिया करते हैं ॥५९॥

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।
चारभटचोरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥ ६० ॥

६०—वेश्या की निन्दा (३)

चूमे कौन अधर वेश्या का, यदपि मनोहर अरु सुकुमार ।
कुल-पुरुषों की चीज नहीं, वो थूकपात्र अपवित्र अपार ॥
गन्दा करते जिसको हरदम फौजी, तस्कर, चेटक, चार ।
इससे रहते दूर विवेकी, अशुद्धता का ये आगार ॥

चार (खुफिआ), भट (सिपाही), चोर, चेटक (स्त्री-पुरुषों को मिलानेवाले दूत), नट (स्वांग बनानेवाले), और विट (जार) के उच्छिष्ट पात्र, सुन्दर भी वेश्या के अधरपल्लव का कौन कुलीन पुरुष चुम्बन करता है अर्थात् कोई नहीं ॥ ६० ॥

धन्यास्त एव धवलायतलोचनानां
तारुण्यदर्पघनपीनपयोधराणाम् ।
क्षामोदरोपरि लसत्त्रिवलीलतानां
दृष्ट्वाऽऽकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम् ॥६१॥

६१—भाग्यवान नर वह है जिसके चित्त में नवयुवती के देखने पर विकार उत्पन्न न हो

यौवन की तरंग में जिसके, हो आये कुच पुष्ट सघन ।
आँखें उजली बड़ी-बड़ी हैं, उदर क्षीण में त्रिवली फबन ॥

ऐसी नारी का दर्शन पा, नहिं विकार जिसके मन होय।
भाग्यशील कहते हैं उसको, धन्य पुरुष जानों जग सोय॥

सुन्दर एवं विशाल नेत्रवाली, यौवन के गर्व से अत्यन्त पुष्ट स्तनोंवाली, क्षीण, उदर (मध्यभाग) पर शोभायमान त्रिवली लतावाली विलासिनियों के आकार को देखकर भी जिनका मन विकार (चंचलता) को नहीं प्राप्त होता वे ही महाशय धन्य हैं॥ ६१॥

बाले ! लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टिपाताः
किं क्षिप्यन्ते-विरम-विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते।
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः॥६२॥

६२—विरक्त चित्त वाले पर स्त्री का वश नहीं (१)

हे बाले, मत करै वृथा श्रम, रुक जा तेरी कौन मजाल ?
आलसपूर्ण अधखुली आँखों से, मारे क्यों तीर निकाल ?
बदल गये हम, गया लड़कपन, मन अब बसता बन में हैं।
छूटा मोह, जुटे साधन में, जगज्जाल सम तृन के है॥

हे बाले ! विलास के कारण अर्धमीलनपूर्वक आलस से भरे इन कटाक्षों को हम पर क्यों गिरा रही हो ? कटाक्षपात के व्यापार से एकदम रुक जाओ, क्योंकि तुम्हारा यह कटाक्षवीक्षण का प्रयत्न व्यर्थ है। कारण यह है कि लड़कपन बीता, अब हम कुछ अन्य से ही हो रहे हैं। अब वन में श्रद्धा (रहकर चिन्तन का विचार) हुई है। मोह नष्ट हो गया। सांसारिक प्रपंच को तृण के समान व्यर्थ विचार रहे हैं॥ ६२॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचोरं चक्षुःक्षिपति किमभिप्रेतमनया।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरशबरबाणव्यतिकर-
ज्वर-ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति॥६३॥

६३—विरक्त चित्त वाले पर स्त्री का वश नहीं (२)

कौन प्रयोजन इस बाला का ? मुझको जो ये ताक रही—
नये कमल की सुन्दरता के, प्रभा चोर हैं चक्षु सही ॥
काम शिकारी की शर ज्वाला, शान्त हुई मन मोह गया ।
फिर भी नहीं छोड़ती बाला, नेत्र चलाना, मूर्ख तिया ॥

यह सुन्दरी नीलकमल के पत्ते की सुन्दरता को चुरानेवाली अर्थात् नील कमलतुल्य अपनी चक्षु को सर्वदा लगातार मुझ पर डाला करती है अर्थात् कटाक्ष से मुझे सदा देखा करती है । इसने क्या सोचा है ? हमारा मोह अर्थात् विषयासक्ति नष्ट हो चुकी है । कामदेव रूप भिल्ल के बाणों के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला ज्वर का ताप भी शान्त हो गया अर्थात् मिट गया फिर भी यह बेचारी उस व्यापार से नहीं रुक रही है ॥ ६३ ॥

किं कन्दर्प ! करं कदर्थयसि रे कोदण्डटङ्कारितं
रे रे कोकिल ! कोमलं कलरवं किंवा वृथा जल्पसि ।
मुग्धे ! स्निग्धविदग्धचारुमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥ ६४ ॥

६४—विरक्त चित्तवाले पर स्त्री का वश नहीं (३)

छप्पय

अरे मदन, करके टँकार धनु, शरसाधन क्यों करता है ?
क्यों रे कोयल, कर कोमल रव, मन मेरा क्या हरता है ?
कान्ते, तेरी चंचल चितवन, सरस, मनोहर अरु बाँकी ।
प्रेम, मधुरता, हाव भाव सब, व्यर्थ जायगी चालाकी ॥
मेरा मन अब लग रहा, चंद्रचूड-पद-ध्यान में ।
चरणामृत का कर रहा, हिरदे भीतर पान में ॥

रे काम ! धनुष की मौर्वी की टङ्कारध्वनियों से अपने हाथ को क्यों बेकार कर रहे हो ? अरी कोयल ! कोमल-कोमल अपनी कुहू की ध्वनि से क्यों व्यर्थ कूक रही हो ? हे सुन्दरि ! प्रेमपूर्ण, विलासपूर्ण, सुन्दर और मधुर तथा चंचल अपने कटाक्षपातों को बस रहने दो, क्योंकि अब कोई प्रयोजन नहीं है ।

कारण यह है कि अब मेरा मन शिवजी के चरणों के ध्यानरूप अमृत में लीन हो गया है ॥ ६४ ॥

विरहेऽपि सङ्गमः खलु परस्परं सङ्गतं मनो येषाम् ।
हृदयमपि विघट्टितं चेत् सङ्गी विरहं विशेषयति ॥ ६५ ॥

अध्याय (४) विविध विषय ।

६५—मन मिले हों तो वियोग भी मिलन तुल्य है। फटे दिलों
का संयोग वियोग से भी बुरा है

मन सगति हो प्रेम भरी, तो वियोग भी रहता संगम !
फटे दिलों का कैसा मिलना, वियोग से ज्यादा हों गम ॥

जिन स्त्री-पुरुषों का मन आपस में अनुराग से बँधा हुआ है, उनका वियोग में भी निश्चय ही सङ्गम हुआ करता है। यदि मन को विघटित वैराग्योन्मुख किया जाय तो सङ्गम वियोग को ही विशेष करता है अर्थात् बढ़ाता है ॥ ६५ ॥

किं गतेन यदि सा न जीवति प्राणिति प्रियतमा तथापि किम् ।
इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥६६॥

६६—वर्षा काल में यात्री का उत्साह कुण्ठित हो जाता है

जो नहिं जिन्दा प्रिया हमारी, तो हम जाय करेंगे क्या ?
यदि जीती है परम दुलारी, फिर भी धाय करेंगे क्या ?
नव घन मंडल देखि गगन में, यात्रा से ऐसे ऊबे।
आगे घर की ओर न जाते, पथिक शोक-सागर डूबे ॥

कोई प्रवासी विचार द्वारा वैराग्य को प्रकट करते हुए कह रहा है—यदि वह मेरी प्रियतमा विरह-व्यथा से जीवित न हो तो जाने से क्या लाभ ? और यदि जीवित है तो भी क्या ? ऐसा सोचकर कोई एक पथिक नई मेघ की घटा को देखकर भी अपने घर नहीं जा रहा है ॥ ६६ ॥

विरमत बुधा ! योषित्सङ्गात्सुखात्क्षणभङ्गुरात्
कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसङ्गमम् ।

न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥ ६७ ॥

६७—कान्ता-सुख क्षण-भंगुर है, नरक से बचा न सकेगा
क्षणभंगुर सुख है कान्ता का, पण्डित इसको देना त्याग।
करुणा, प्रज्ञा, मैत्री रूपी, वधू जनों से हो अनुराग॥
घने पयोधर हार सुशोभित, अथवा कटि भूषित कांची।
जाते नरक, सहाय न करते, बात समझ लो ये सांची॥

बुद्धिमानो! क्षण में ही नष्ट होनेवाले अर्थात् क्षणिक स्त्री-सङ्गम रूपी सुख से विराम करिये अर्थात् उससे अपने को बचाइये। करुणा-दीनों पर दया सज्जनों के साथ मित्रता और विशिष्ट-बुद्धि रूप स्त्रीजनों का सङ्गम करिये। कारण यह है कि नरक में हार से सुशोभित, परस्पर संलग्न स्तन-मण्डल झनझनावाले घुंघुरुओं से बनी करधनीवाला नितम्बभाग निश्चयेन रक्षक नहीं हो सकता। इसमें सांख्यमत है॥ ६७॥

यदा योगाभ्यासव्यसनकृशयोरात्ममनसो-
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति कृतिनस्तस्य किमु तैः।
प्रियाणामालापैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः
सनिश्वासामोदैः सकुचकलशाश्लेषसुरतैः॥ ६८॥

६८—योगी जन को चन्द्रमुखी से क्या प्रयोजन ? (१)

छप्पय

करते जो अभ्यास योग, एकान्त बैठ साधन में।
पाते हैं अतिस्फुरित मित्रता, आत्मा में अरु मन में॥
कौन प्रयोजन उन्हें, नारि प्यारी के मिठ बोलों से॥
अधरामृत के पान, चन्द्रमुख, श्वासा कल्लोलों से।
कौन काम की कान्ता, जो उसको देखा करें।
कुच-कलशों को उर लगा, प्रेम-सीम लेखा करें॥

जिस समय जिस मनुष्य के अष्टाङ्गयोग अर्थात् यम-नियमसहित चित्तवृत्ति के रोध से कृश हुए आत्मा और मन की मैत्री अविच्छिन्न अर्थात् लगातार

प्रकाशित होती रहती है, उस धन्यात्मा को उन निम्नलिखित पदार्थों से क्या लाभ है। प्रियाओं के मधुर पारस्परिक भाषणों से अधरामृत (पान) से, निश्वास से उत्पन्न सुगन्धिपूर्ण मुखचन्द्रों से तथा कुचकलशों के सहित आलिङ्गन-क्रीडाओं से। अर्थात् वैरागी को इन सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं। योगमतानुसार यह पद्य प्रतीत होता है ॥ ६८ ॥

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसञ्चारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदिति ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥ ६९ ॥

६९—योगीजन को चन्द्रमुखी से क्या प्रयोजन (२)

काम जनित मद अंधकार, अज्ञान पूर्ण जब तक मन था ।
तब तक हमको नारि भरा, सब जगत महा सम्मोहन था ॥
पर अब पा अंजन विवेक, आँखों पर जब से सारा है ।
दृष्टी-गोचर ब्रह्म रूप ही, त्रिभुवन बीच हमारा है ॥

वेदान्तमत से निरूपण यहाँ है। जब कामोत्पन्न अन्धकार के फैलने से उत्पन्न अज्ञान (मूढ़ता) था, तब यह संपूर्ण जगत् नारीमय दिखाई (जान) पड़ता था। अब अत्यन्त उचित (ठीक-ठीक) ज्ञान रूप अञ्जन (सुरमा) लगानेवाले हमलोगों की सम (ठीक-ठीक) भई हुई दृष्टि या विचार तीनों भुवनों को भी ब्रह्म-स्वरूप मानती या मानता या मानता है ॥ ६९ ॥

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः ।
यावदेव न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते चटुललोचनाञ्चलैः ॥ ७० ॥

७०—सुन्दरी के दर्शन से ज्ञान दीप बुझ जाता है ॥

निर्मल ज्ञान दीप है जलता, तब तक सुकृती उर पावन ।
कान्ता चन्द्रमुखी का जब तक, न हो प्राप्त नर को दर्शन ॥
अंचल रूपी दृग मृग-लोचनि, चंचल हो दे वायु कहीं ।
बुझ जायेगा ज्ञान दीप, फिर जलने की सामर्थ नहीं ॥

चतुर पुरुषों का भी यह शुद्ध विवेक अर्थात् सदसद्विचार रूप दीपक तभी तक प्रकाशित होता (जलता) रहता है जभीतक मृगनयनियों के चंचल कटाक्षों से विद्ध नहीं होते ॥ ७० ॥

वचसि भवति सङ्गत्यागमुद्दिश्य वार्ता
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम् ।
जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं
कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥७१॥

७१—कमलनयनी का त्याग कठिन है

पण्डित जन कह संग त्याग को, केवल करते-हैं बकवास ।
शास्त्र ज्ञान से उनके बनता, नहीं काम है कोई खास ॥
पद्माक्षी की खचित पद्ममणि, देखि काञ्ची दिव्य स्वरूप ।
और मनोहर जंघा कान्ता, त्याग सके को वस्तु अनूप ?

निरन्तर वेदाभ्यास में तत्पर विद्वानों को केवल वार्तालाप में ही स्त्रीसङ्ग के त्यागसम्बंधी बात चलती है। कमलनयनियों के पद्मराग नामक रत्न से जड़ी हुई करधनी ही भूषण जिसकी ऐसे जघन को कौन छोड़ सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ७१ ॥

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवतीः ।
यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गः स्वर्गेऽपि चाप्सरसः ॥ ७२ ॥

७२—तपस्या से अन्त में स्वर्ग व अप्सरायें ही मिलती हैं

निन्दा कर जो युवती जन की, औरों को है ठगता ।
है वह पण्डित स्वयं अधूरा, पूरी बात न कहता ।
कारण करे तपस्या तब भी, अवशि स्वर्ग जाता है ।
भोग अप्सरा जा मिलता है, छोड़ कहाँ पाता है ?

शास्त्र-रहस्य का अज्ञाता अपने को पण्डित समझनेवाला जो व्यक्ति युवतियों की निन्दा किया करता है यह (वह) स्वप्रतारक और परप्रतारक अर्थात् अपने आपको और दूसरों को ठगनेवाला है। जिस कारण से तपस्या

(व्रतोपवास या चान्द्रायणादि) का फल स्वर्ग है और स्वर्ग में भी अप्सरा अर्थात् उनका सङ्गम फल हैं ॥ ७२ ॥

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति धीराः
केचित् प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥ ७३ ॥

७३—कोई विरला पुरुष ही कामदेव का मद चूर्ण कर सकता है

ऐसे धीर पुरुष पृथ्वी पर, करें विदीर्ण मस्त गज मुंड ।
ऐसे भी हैं दक्ष मनुज जो, मार सकें मृगराज प्रचण्ड ।
पर कहता ललकार, सुनें सब वीर सनेही ।
कामदेव का मद मर्दन, करते विरले ही ॥

कुछ लोग इस पृथ्वी पर मतवाले हाथियों के गण्डस्थल को दलनेवाले हैं और कुछ लोग प्रचण्ड अत्यन्त (क्रोध में भरे) सिंह का वध करने में चतुर और समर्थ हैं । किन्तु बलवानों के सामने दृढ़ता के साथ मैं कहता हूँ कि कामदेव के गर्व को चूर्ण करने में समर्थ बिरले ही लोग (नहीं के बराबर) हैं ॥७३॥

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति च नरस्तावदेवेन्द्रियाणां
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते
यावल्लीलावतीनां हृदि न धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति ॥७४॥

७४ मनुष्य सन्मार्ग में तभी तक चलता है, जब तक लीलावती की कटाक्ष-दृष्टि नहीं पड़ती

नर चलता सन्मार्ग तभी तक, है इन्द्रियजित कहलाता ।
लज्जाशील, विनीत, धीरधर, अनुपम गुण भी दिखलाता ॥
जब तक भृकुटी करके बाँकी, लीलावति अवरोध न दे ।
नील रोम मय खिंचा कान तक, नेत्रबाण उर भेद न दे ॥

इस लोक में पुरुष तभी तक सन्मार्ग (सदाचरण) में रहता है, और

अपनी इन्द्रियों पर अधिकार रहता है अर्थात् इन्द्रियों को अपने वश में रखता है तथा तभी तक लज्जा भी करता है और तभी तक विनय का आधार लेता है अर्थात् नम्र बना रहता है, जब तक कि भृकुटिरूपी धनुष से खींचकर छोड़े, कान के मार्ग में पहुँचे, नील या काली बरौनीवाले, धीरज को चुराने वाले ये विलासिनियों के कटाक्षपातरूपी बाण हृदय पर नहीं गिरते अर्थात् चोट नहीं पहुँचाते। विलासिनियों के अपाङ्गवीक्षण से धीरज छूट जाने पर सन्मार्गादि पर रहना पुरुषों के लिए कठिन हो जाता है ॥ ७४ ॥

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदङ्गनाः ॥
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः ॥ ७५ ॥

७५—जब स्त्रियाँ प्रेम में मग्न हो कोई काम करती हैं तब ब्रह्मा भी नहीं रोक सकते

अति उत्कण्ठ उमङ्ग प्रेम में, जब ललनायें काम करें।
हो जाते असमर्थ विधाता, कौन रोक अरु थाम करें ?

स्त्रियां अति उत्कट प्रेम के वेग से जो उचित या अनुचित काम आरंभ करती हैं उसमें ब्रह्मा भी विघ्न या अड़चन डालने में निश्चय हो कातर अर्थात् असमर्थ हैं ऐसी दशा में दूसरों की बात ही क्या ? संभव ही नहीं ॥ ७५ ॥

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हतः पञ्चेषुपावकः ॥ ७६ ॥

७६—तभी तक महानता, विद्वत्ता, विवेक आदिक गुण विराजते हैं जब तक कामाग्नि प्रज्वलित नहीं होती

तब तक रहते हैं महानता, विद्वत्ता, कुललाज, विवेक ।
जब तक लगे न काम-बाण, उर, प्रगटावे पंचाग्नि अनेक ॥

जब तक अङ्गों में नीच कामाग्नि नहीं जलती रहती है, तब तक ही गौरव, विद्वत्ता, उच्च कुल में उत्पत्ति तथा सदसद्विचार आदि बने रहते हैं। कामपीडित व्यक्ति गौरवादि को खो देता है ॥ ७६ ॥

शास्त्रज्ञोऽपि प्रगुणितनयोऽत्यात्तबाधोऽपि बाढं
संसारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ।

येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती
वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव ॥ ७७ ॥

७७—स्त्रियों के कारण पण्डित को सद्गति पाना कठिन है

कितना कोई पढ़े शास्त्र, हो नीतिमान आत्म-ज्ञानी।
विरला पुरुष सद्गती पाता, भोगी जिन जग में ज्ञानी ॥
कारण टेढ़ी भ्रू कुंजी से, खोल-खोल नरकों-ताले।
मृगनयनी भरती रहती हैं, ढूंढ ढूँढ कर मतवाले ॥

इस संसार में शास्त्रों के रहस्यों का ज्ञाता भी बारम्बार नीतिशास्त्र का परिशीलनकर्त्ता भी, पूर्णरूप से यथार्थ ज्ञान को प्राप्त भी पुरुष सद्गतियों का पात्र अर्थात् योग्य विरला ही होता है। तात्पर्य सबकुछ सद्गुण होने पर भी स्वर्ग-मोक्षादि की प्राप्ति असंभव-सी हो है। कारण यह कि इस संसार में सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों की टेढ़ी-टेढ़ी लता के समान भृकुटि नरकपुरी के दरवाजे को अर्थात् उसमें लगे ताले को खोलने वाली ताली की तरह होती है। भाव यह है कि स्त्रियों के कटाक्षपात द्वारा सद्गति छोड़ दुर्गति का प्राप्त होना ही संभव है ॥ ७७ ॥

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः।
क्षुधा क्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥७८॥

७८—कामदेव दीनावस्था में भी नहीं छोड़ता

कुत्ता दुबला, बहिरा, काना, लंगड़ा हो वा पुच्छविहीन।
घायल होवे, पीब पड़ी हो, जिसमें सड़ी कृमि नवीन॥
क्षुधित वृद्ध हो, क्षीण गले हो, गागर का मुख फँसा हुआ।
पर कुतिया का पीछा करता, नहीं छोड़ता मदन मुआ॥

खाने को न मिलने से दुर्बल-शरीरवाला, काना, लंगड़ा, कटे कानवाला बिना पूछ का, सर्वाङ्ग क्षत (घाव) वाला अतएव पीप से भरा सैकड़ों कृमियों से

पूर्ण शरीरवाला, भूख से कृश बुढ़ापे के कारण शिथिल अङ्गवाला एवं भाड़ (अन्न भूजने का मिट्टी का पात्र) में अपना गला फँसाकर दुःख पानेवाला भी कुत्ता मैथुनार्थ कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ता है। कामदेव सब प्रकार से नष्ट भी उस कुत्ते को और भी मानसिक कष्ट पहुँचाता ही है ॥ ७८ ॥

स्त्रीमुद्रां कुसुमायुधस्य जयिनीं सर्वार्थसम्पत्करीं
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित् पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥७९॥

७९—कामदेव की मुद्रा स्त्री है

कामदेव की मुद्रा स्त्री, दे जय, सम्पति भोग विलास।
इसको त्यागि मूर्ख जो चाहें, इच्छित फल, अरु करें प्रयास।
उनको कर देता वह नंगा, सिर मुंड़वा पिटवाता है।
रखा जटा या पंचशिखा, दे खप्पर भीख मंगाता है।

जो दुर्बुद्धि अतएव कर्त्तव्याकर्तव्य ज्ञान-हीन मूर्ख सर्व अर्थ अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-स्वरूप त्रिवर्ग की सम्पत्ति को करनेवाली कामदेव की सर्वश्रेष्ठ स्त्रीरूपी मुहर या चिह्न को छोड़कर अर्थात् सर्वविध सुख का साधन स्त्री को त्याग कर मिथ्या फल-मोक्षरूप असत्य फल को ढूंढ़ते हुए वानप्रस्थ अथवा संन्यास ग्रहण करते हैं, कामदेव उसी के द्वारा कठोरता से मारकर उनमें से कुछलोगों को नंगा (दिगम्बर) करता है और कुछ लोगों को मुण्डित एवं अर्ध मुण्डित तथा जटाधारी, हाथ में खप्पड़ को धारण करनेवाला बना देता है। जिस प्रकार अनुचित कार्यकर्त्ता को राजा या अधिकारी भिन्न-भिन्न प्रकार का दण्ड देता है उसी प्रकार कामदेव भी स्त्री-त्यागियों को दण्डद्वारा दुर्दशा करता है ॥ ७९ ॥

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यः प्लवेत्सागरे ॥८०॥

८०—दूध, दही, घी आदि पदार्थ भोग करते हुए इन्द्रियों को वश में रखना असम्भव है।

छप्पय

विश्वामित्र, पराशर आदिक, मुनिवर साधक विज्ञानी।
करते थे भक्षण, तन रखने को, वायू, पत्ते, पानी॥
सुन्दर मुख-पंकज नारी का देख, हुआ जब उनको मोह।
कहैं बात क्या उन लोगों की, रहें पुष्टता को जो टोह॥
दूध, दही, घी, संग उड़ा, शालि, अन्न होकर निडर।
इन्द्री फिर भी वश करें, तो विन्ध्य बहे वारीष पर॥

हवा-पानी-पत्ता आदि खानेवाले वे विश्वामित्र-पराशर-शाण्डिल्य आदि मुनि भी अत्यन्त सुन्दर स्त्री (मेनका, रंभा, सत्यवती आदि) के मुख-कमल को देखकर ही मोहित हुए। फिर शालि (धान-विशेष) के भात को घी, दूध, दही के साथ जो मनुष्य खाते हैं, वे यदि अपनी इन्द्रियों का निग्रह (रोकथाम) कर सकें तो यही कहना पड़ेगा कि विन्ध्य पहाड़ समुद्र में तैरने लगे॥ ८०॥

(ऋतु वर्णन में वसन्त)

परिमलभृतो वाताः शाखा नवाङ्कुरकोटयो
मधुरविधुरोत्कण्ठाभाजः प्रियाः पिकपक्षिणाम्।
विरलविरसस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः
प्रसरति मधौ धात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः॥८१॥

८१—मधु ऋतु में प्रकृति मतवाली हो जाती है

चलने लगी सुगन्धित वायू, नव अंकुर शाखा सम्पूर्ण।
भुला रहा पिक अपनी प्यारी, भरा मदन उत्कण्ठा पूर्ण॥
ललनाओं के चन्द्र-मुखों पर, स्वेद झलकता सुभग चढ़ा।
पृथ्वी पर मधु ऋतुने आकर, किसमें मद नहिं दिया बढ़ा॥

ऋतुवर्णन-प्रसङ्ग में कवि प्रथम वसन्त ऋतु का वर्णन करता है—पृथ्वी पर वसन्त ऋतु के फैलने पर किस वस्तु के गुण का उत्कर्ष नहीं हुआ? अपितु सभी वस्तुओं के गुण अधिकता से बढ़े। जैसे-उपवन में के पवन ने

पुष्पादि और मलयचन्दन की सुगंधि को धारण किया। आम आदि वृक्षों की शाखाओं (टहनियों) ने अपने अग्रभाग में नवीन पल्लवों को धारण किया। पिक पक्षियों की प्रियाओं (कोयलों) ने मधुर=रसाल के अंकुरों के आस्वाद से मिष्ट एवं विधुर=काकों के उपद्रव से द्विगुण कष्टकर उत्सुकता अर्थात् दूनी कुहू की सुन्दर ध्वनि को ग्रहण किया और स्त्रियों के मुखचन्द्रों ने बहुत ही विरलस्वेद (पसीने) का उद्गार पसीने की बूंदों को धारण किया ॥ ८१ ॥

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला कलरवैर्मलयस्य च वायुभिः ।
विरहिणः प्रहिणस्ति शरीरिणो विपदि हन्त सुधापि विषायते ॥८२॥

८२—मधु ऋतु में विरही और अधिक कष्ट पाते हैं

मलयाचलकी पवन रही वह, पिक गायन मधु बोल अनूप ।
पर विरही मरते हैं इनसे, विपदा में अम्मृत विष रूप ॥

यह प्रायः सभी को आनन्दित करनेवाला ऋतुराज वसन्त कानों को मधुर मालूम पड़नेवाले कोइलियों 'कुहू' शब्दों से और मलय पर्वत से आनेवाले पवनों से भी वियोगीजनों का नाश करता है। यही बात है कि विपत्तिके समय अमृत भी विष के समान प्राण लेनेवाला हो जाता है ॥ ८२ ॥

आवासः किलकिञ्चितस्य दयिताः पार्श्वे बिलासालसाः
कर्णे कोकिलकामिनीकलरवः स्मेरो लतामण्डपः ।
गोष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैर्मुग्धाः सुधांशोः कराः
केषाञ्चित् सुखयन्ति चात्र हृदयं चैत्रे विचित्राः क्षपाः ॥८३॥

८३—चैत्र मास के भोग विरले भाग्यवान ही पाते हैं

छप्पय

कोयल कलरव कान, आ रहे, मण्डप लता खड़े तैयार ।
मृदु विचित्रमाला शोभित उर, सुकवि समागम हो दरबार ॥
किंचित्रोष हर्ष भय खाये, कान्ता हो ढिग गुण की खान ।
हृदय काम अनुराग प्रफुल्लित, भाग्यवान को दें भगवान ॥

चन्द्र किरन चमका रहीं, चैत्र मास के भोग।
बड़े पुण्य से जगत में, बिरले पावें लोग॥

चैत के महीने में अर्थात् वसन्त में निम्नलिखित वतुएँ किन्हीं विरले ही लोगों के हृदय को आनन्दित करती हैं। यथा—आसपास में १- क्रोध, आँसू, हर्ष, भीति से मिश्रित शृङ्गार-चेष्टाओं का बना रहना; २-लीलाओं से आलसपूर्ण प्रेयसियाँ, ३-कानों में कोइलियों का मीठा स्वर, ४-अधखिले फूलोंवाला लतामण्डप, ५- कुछ (इने-गिने) अन्तरङ्ग सत्कवियों के साथ गोष्ठी अर्थात् बैठक और बातचीत, ६-सुन्दर-सुन्दर चन्द्रमा की किरणें और ७- विचित्र-सी लगनेवाली रातें अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार और रंग की मालाएँ। 'क्षपाः' के स्थान पर 'स्रजः' पाठ मानकर दूसरा अर्थ अंत में दिया है॥ ८३॥

पान्थस्त्रीविरहानलाहुतिकलामातन्वती मञ्जरी
माकन्देषु पिकाङ्गनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते।
अप्येते नवपाटलापरिमलप्राग्भारपाटच्चरा
वान्तिक्लान्तिवितानतानवकृतः श्रीखण्डशैलानिलाः॥ ८४॥

८४—वसन्त में विरहिणी कान्ता की यात्रा

आहुति देने विरह अग्नि में, आम्र-मंजरी फूल रही।
जिसे देख उत्कण्ठित स्वर गा, कोयल प्यारी हूल रही॥
दग्ध वियोगानल से कान्ता, नहीं जा रही प्रेम सँभार।
मलय पवन धीरज देते हैं, अरु नव पाटल पुष्प बहार॥

इस समय कोकिलाएँ आम के पेड़ों पर रहनेवाली, जिनके पति परदेश में गये हुए हैं ऐसी स्त्रियों को वियोगाग्नि में आहुतियाँ मानो देनेवाली पुष्पमञ्जरियों को बड़ी उत्कण्ठा (चाव) से देखती हैं और नये गुलाब के फूलों की सुगन्धि रूप संपत्ति को चुराने (हरने) वाली, क्लान्ति (थकावट आदि) के विस्तार को कम करनेवाली, मलय पर्वत (चंदन के पेड़ों के उत्पत्तिस्थान) से आनेवाली हवाएं बहुत ही कम बहती हैं। इससे सूचित होता है कि यह वसन्तऋतु का समय है॥ ८४॥

प्रथितः प्रणयवतीनां तावत्पदमातनोतु हृदि मानः ।
भवति न यावच्चन्दनतरुसुरभिर्मलयपवमानः ॥८५॥

८५—बसन्त ऋतु की पवन से प्रिया की प्रसन्नता

मान गुमान टेक है तब तक, प्राण प्रिया के हिरदे बीच ।
मलय सुगन्धित वायु न जब तक, मस्तीसे मन देवे खींच ॥

प्रेम करनेवाली स्त्रियों (प्रेमिकाओं) का प्रसिद्ध वह मान उनके हृदय में तभी तक रहे, जब तक चन्दन के वृक्षवर से आने के कारण सुगन्धित, मलय का पवन नहीं बहता ॥ ७५ ॥

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते ।
मधुरमधुरविधुरमधुपे मधौ भवेत् कस्य नोत्कण्ठा ॥८६॥

८६—वसन्त ऋतु में सभी काम में आसक्त हो जाते हैं

जहँ देखों तहँ आम्र-मंजरी, केसर से है भरी हुई ।
खूब पिये मकरन्द मिष्ठ, उन्मत्त पांति अलि जमी हुई ॥
पा करके ऋतुराज बसँत को, कहाँ नहीं अनुराग कहो ।
है वह कौन जीव इस जगका, जिसे भोग अभिलाष न हो ?

अति सुगन्धिपूर्ण रसाल (आम) की पुष्पमंजरी (बौर) के समूहों की अधिकता से प्रतीत सुगन्धि से व्याप्त दिङ्मण्डल जिसमें ऐसे, मीठे मकरन्द-पान से उन्मत्त भ्रमरवाले वसन्त में किस पुरुष अथवा स्त्री को संभोग की उत्सुकता न उत्पन्न हो । अर्थात् ऐसे समय सभी को वासना उत्पन्न होती है ॥ ८६ ॥

अच्छाच्छचन्दनरसार्द्रतरा मृगाक्ष्यो
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च ।
मन्दो मरुत् सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठं
ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्धयन्ति ॥ ८७ ॥

८७—निदाघ ऋतु में मद और मदन का जोर

चन्द्र चाँदनी पुष्प प्रफुल्लित, धारागृह के फव्वारे।
मृगनयनी चन्दन रस-चर्चित, भव्य भवन के चौबारे॥
शीतल मन्द पवन चलती हो, दिन का ताप भगाने दूर।
मद अरु मदन बढ़ा देते हैं, ऋतु निदाघ में ये भरपूर॥

ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त स्वच्छ चंदन के रस (घिसा हुआ चंदन) से अतीव आर्द्र मृगनयनियां, फौव्वारे (जलयंत्र), सुगंधित पुष्प, चांदनी, धीमी हवा, मन को आनंदित करनेवाली महलों की अट्टालियाँ—ये सब पदार्थ हर्ष एवं काम को बढ़ाते (दूना-चौगुना करते) हैं॥ ८७॥

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः
परागः कासारो मलयजरजः शीधु विशदम्।
शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो
निदाघर्तावेतद्विलसति लभन्ते सुकृतिनः॥ ८८॥

८८—निदाघ ऋतु में सुख देने वाली वस्तुएँ।

छप्पय

गन्ध भरे फूलों की माला, चन्दन मलयाचल का होय।
ऊँची छत अरु चन्द चाँदनी, मद्य मोहनी दे गम खोय॥
पट महीन हो, पराग उत्तम, मृगनयनी ले पंखा साथ।
क्रीडाघर का होय सुभीता, कान्ता का मन अपने हाथ॥
ये चीजें प्यारी लगें, ऋतु निदाघ में पाय कर।
भाग्यवान हैं भोगते, इन्हें खूब मन भाय कर॥

मनोहर गन्धवाली मालायें, ताड़ के पंखे की हवा, चाँद की किरणें, कमलों का पराग (धूलि), चंदन का चूर, निर्मल मद्य, पवित्र अर्थात् साफकर पानी से सींची हुई महल की गोद याने अटारी, सूक्ष्म (बारीक, महीन) कपड़ा और कमलनयनियाँ भाग्यवान या पुण्यवान लोग ग्रीष्मऋतु में इन उपर्युक्त पदार्थों के सुख को पाते हैं॥ ८८॥

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः शशधरः
प्रियावक्त्राम्भोजं मलयजरजश्चातिसुरभि ।
स्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जने
करोत्यन्तः क्षोभं न तु विषयसंसर्गविमुखे ॥८९॥

८९—जो पदार्थ भोगी के चित्त में क्षोभ उत्पन्न करते हैं योगी के चित्त में नहीं करते

उज्ज्वल धाम पुते चूने से, निर्मल चन्द्र चाँदनी रात।
स्रक् सुगन्ध, तन चन्दन-चर्चित, मुख प्यारी पंकज सम गात ॥
अनुरागी पुरुषों के उर में, ये पदार्थ करते अति क्षोभ।
पर जो विमुख विषयसुख रहते, उनके चित में रंच न क्षोभ ॥

सुधा = चूना उसके द्वारा छुहे जाने से धवल धाम, निर्मल किरणों से प्रकाशमान चन्द्रमा, प्रिया का मुख-कमल अत्यन्त सुगन्धित चन्दन का चूर्ण, मन को हर्षित करनेवाली मालाएँ—यह सब रागी अर्थात् प्रेमी जन के हृदय में चल-विचल मचाता है वैरागी पुरुष के नहीं ॥ ८९ ॥

तरुणीवेषोद्दीपितकामा विकसज्जातीपुष्पसुगन्धिः ।
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावृट् तनुते कस्य न हर्षम् ॥९०॥

९०—वर्षा ऋतु की शोभा (१)

तरुणी का है वेश, काम उद्दीपित करती।
विकसित जाती-पुष्प सरीखी, महक निकलती ॥
ऊँचे कुच अरु पुष्ट, सुशोभित हैं उर ऊपर।
किसे हर्ष वर्षा नहिं करती, बदन दिखाकर ?

अत्यन्त तीव्र काम अथवा सुरताभिलाषवाली, खिलनेवाली मालती के फूलों की गन्ध से भरी, उनये गाढ़ मेघों से पूर्ण अथवा उन्नत और पुष्ट स्तनों वाली, तरुणी स्त्री के वेष के समान वेषवाली यह वर्षा किसके हर्ष को नहीं करती ? अर्थात् सभी को हर्षित करती है ॥ ९० ॥

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो
नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः ।
शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ॥९१॥

९१—वर्षा ऋतु की शोभा (२)

मेघाच्छन्न अकाश, अंकुरित है अब पृथ्वी।
कुटज कदम्ब गंध ले वायू, इठलाती ज्यों तन्वी॥
मोरों के केकारव देते, वन प्रदेश को रम्य बनाय।
उत्कण्ठा सुख भोग, सभीके, सुखी दुखी उर देत उठाय॥

उपचित मेघवाला (प्रायः नित्य ही आकाश में बादल जमा होते हैं) आकाश, अंकुरवाली भूमियाँ, नये कुटज (वन्यपुष्प) और कदम्ब के फूल से सुगन्धित उपवन के पवन मयूरों की सुन्दर केका (मयुरवाणी) की गूंजों से मनोहर ये क्रीडावन के मध्यभाग सुखी या दुःखी सभी प्राणियों को उत्कण्ठित करते हैं ॥ ९१ ॥

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नर्तितमयूराः ।
क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टिं पथिकः क्व पातयति ॥९२॥

९२—वर्षा ऋतु की शोभा (३)

नभ घनघोर मेघ हैं छाये, वाम-दहिन गिरि नाचें मोर।
हरे भरे अंकुर पूरित महि, यात्री कहो लखै किस ओर ?

ऊपर आकाश में घने बादलों का समूह है, तिरछे अर्थात् दिशाओं में मेघों के कारण उल्लासवशवाले मयूरों से पूर्ण पहाड़ हैं और अंकुरों की उत्पत्ति से स्वच्छ पृथिवी है। ऐसी दशा में पथिक अपनी दृष्टि को कहाँ पर डाले। क्योंकि मार्ग में दिखाई पड़नेवाले ये सभी पदार्थ उद्दीपक (सतानेवाले) हैं ॥ ९२ ॥

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकितरोः
स्फुरन् गन्धः प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः ।

इतः केकिक्रीडाकलकलरवः पक्ष्मलदृशां
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः सम्भृतरसाः ॥९३॥

९३—वर्षा ऋतु में विरहिणी स्त्रियों की व्याकुलता (१)
दामिनि दमके यहाँ, वहाँ, उत्कट सुगन्धि केतकी चली।
घन गरजें घनघोर इधर, वाँ शोर मचाती मोर अली॥
रस उद्दीपित हो जब चहुँ दिशि, सभी सृष्टि हो मतवाली।
विरह काल ये कैसे काटें, सुन्दरि सुवरौनो वाली॥

इस ओर बिजली की चमक है, केतकी (केवड़ा) नामक वृक्ष के पुष्पों की उठनेवाली सुगन्ध है, इस ओर उठनेवाले बादलों की गर्जन की ध्वनि है, इस तरफ मोरों का क्रीड़ा में सुन्दर कोलाहल है। ऐसे समय चंचल नेत्रवाली कामिनियों के शृङ्गारपूर्ण ये (कष्टकर) वियोग के दिन कैसे बीतेंगे या कटेंगे? उनके लिए ये दिन अत्यन्त ही दुखदायी हैं॥ ९३॥

असूचीसञ्चारे तमसि नभसि प्रौढजलद-
ध्वनिप्राज्ञम्मन्ये पतति पृषतानां च निचये।
इदं सौदामन्याः कनककमनीयं विलसितं
मुदं च म्लानिं च प्रथयति पथि स्वैरसुदृशाम् ॥९४॥

९४—वर्षा ऋतु में विरहिणी स्त्रियों की व्याकुलता (२)
घोर निविडतम नभ जब ऐसा, सूई भी नहिं दीख पड़े।
मेघ गरजते, झड़ी लगाते, मानों महिमा कहैं खड़े॥
जब वर्षा में बिजली चमके, सुवरन की रेखा सम होय।
भोगे अभिसारिका सुनयनी, दुख-सुख ले ऊपर दोय॥

स्वच्छन्दता से कान्त के प्रति अभिसरणशील कामिनियों को मार्ग में अन्धकार के अत्यन्त घने होने पर घने उमड़े बादलों की गर्जना से पूर्ण आकाश के रहते और लगातार बूंदों के गिरते-रहते सोने के सामान पीतवर्ण यह बिजली का विलास अर्थात् प्रकाश (चमक) हर्ष एवं खिन्नता अर्थात् दुख दोनों को करता है। प्रियतम के भवन का मार्ग दिखाई पड़ने से हर्ष

और स्वयं के प्रकाशित हो जाने के भय से दुख—इस प्रकार बिचार उनके मन में उठते हैं ॥ ६४ ॥

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते ।
जाताः शीकरशीतलाश्च मरुतो रत्यन्तखेदच्छिदो
धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे ॥ ६५ ॥

६५—वर्षा ऋतु में प्रेमियों का सुख

लगातार वर्षा से प्रियतम, घर बाहर नहिं जा पावे।
आयतनयनी देखि ठिठुरती, प्रेमालिङ्गित हो जाते॥
जलकणमय शीतल मारुतभी, मिटा रहे उनके श्रमको।
भाग्यवान यों प्रिया-संग से करे दूर दुर्दिन गम को॥

मूसलधार पानी की वर्षा के कारण प्यारे महलों से बाहर नहीं जा सकते। विशालाक्षी प्रियतमाएँ शीत के कारण उठनेवाली कँपकपी को मिटाने या दूर करने के लिये गाढ़ आलिंगन करती हैं। रतिक्रीड़ा से उत्पन्न श्रम को दूर करनेवाली हवाएँ पानी को बूदों से मिली होने से शीतल हो जाती हैं। कुछ भाग्यवान पुरुषों के दुर्दिन-बादलोंवाले दिन अथवा बुरे दिन प्रिया-सङ्गम के कारण सुदिन हो जाते हैं। आश्चर्य की बात है कि औरों के नहीं ॥ ६५ ॥

अर्द्धं सुप्त्वा निशायाः सरभससुरतायासखिन्नश्लथाङ्गः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते ।
सम्भोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलतावर्जितं कर्करीतो
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं पिबति न सलिलं शारदं मन्दपुण्यः ॥६६॥

६६—शरद ऋतु के भाग्यहीन नर

छप्पय

अंग थके हों संगम-श्रम से, कोठे पर हो आधी रात।
मदसे मत्त, तृषा से व्याकुल, प्यारी उठा मगावे पाथ॥

चन्द्र चाँदनी चमकत प्याला, जल नहीं झाड़ी ढाल भरे।
कष्ट शिथिलता का कह अपने, उपालम्भ बक मान करे॥
जो ऐसी कान्ता मिली, नहीं शरद जल पाइये।
तो विलासरत पुरुषको, मन्द भाग्य ही जानिये॥

ठीक आधी रात तक सोकर उद्वेग के साथ सुरत के श्रम से खिन्न अतएव शिथिल अङ्गवाला कोई मंदभागी असहनीय पिपासा लगजाने पर मद्य के नशे में चूर (लीन) होने से सुनसान महल की अटारी पर सुराही में से संभोग से श्रान्त अपनी प्रियतमा के शिथिल भुजा से उड़ेले हुए, चाँदनी के मिल जाने से निर्मल धारवाले, शरद ऋतु के कारण ठंडे पानी को नहीं पीता। भाग्यवान ऐसे पानी को जरूर ही पीते हैं॥ ९६॥

(हेमन्त)

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृतः
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषश्छिन्ना विचित्रै रतैः।
वृत्तोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते॥ ९७॥

९७—हेमन्त ऋतु के सुख (१)

बढ़िया वस्त्र पहिरने वाले दूध, दही, घी से अति चाव।
तन में केसर लेप लगाये, रति-विचित्र से खिन्न सुभाव॥
पुष्ट पयोधर जंघावाली, मृगनयनी का सँग करते।
भरे हुए मुख पान-सुपारी, मित्र-मण्डली में फिरते॥
पुरुष धन्य ये जानिये, ऋतु हिमन्त के बीच।
सुखपूर्वक जो सो रहे, कान्ता उर में भींच॥

हेमन्त ऋतु में दही-दूध, घी खानेवाले, प्रायः मंजीठ रंग (लटकन का रंग) से रँगे कपड़ों को पहिरनेवाले, केसरी चन्दन से पूरी तरह चर्चित गात्रवाले, तरह-तरह की नर्मक्रीडा से श्रान्त हुए, वर्तुल और पीन कुचवाली कामिनीजन के साथ आलिंगन किये हुए पान (बीड़ा) और सुपारी से भरे मुखवाले कुछ भाग्यवान पुरुष घर के भीतर सुखपूर्वक शयन करते हैं॥९७॥

प्रोद्यत्प्रौढप्रियङ्गुद्युतिभृति विकसत्कुन्दमाद्यद्द्विरेफे
कालो प्रालेयवातप्रचलविलसितोदारमन्दारधाम्नि ।
येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोददक्षा मृगाक्षी
तेषामायामयामा यमसदनसमा यामिनी याति यूनाम् ॥९८॥

९८—हेमन्त ऋतु के सुख (२)

छप्पय

लता प्रियंगु प्रफुल्लित होती, कुन्द पुष्प बन भौंरे मस्त।
शीतल वायू चमका देती, मन्दारों को कर-कर ग्रस्त॥
ऋतु हेमन्त ठंड नहिं जाती, युवा पुरुष को छोड़ कहीं।
शीत-निवारण-दक्ष कामिनी, यदि छाती से लगे नहीं॥
लम्बी रातें काटते, दिलमें जिनके लगन हो।
उत्सुक प्रेमी जागते, जैसे यमका सदन हो॥

उत्पन्न होकर बढ़ी हुई प्रियंगु की कान्ति को धारण करनेवाले, खिलनेवाले कुन्द-पुष्पों से मतवाले भ्रमरों से पूर्ण, हिम से पूर्ण अर्थात् ठंडे पवन के चलने से शोभा पानेवाले अतएव सुन्दर मन्दार नामक वृक्षों के धाम स्वरूप काल में अर्थात् हेमन्त समय में शीत के निवारण में निपुण मृगनयनी क्षणभर के लिए भी जिन युवा-पुरुषों के कण्ठ में आलिङ्गन करने के लिए नहीं आ लगी; उन युवाओं को लम्बे पहरोंवाली रात यमराज के भवन के समान अर्थात् प्राण लेनेवाली-सी बीतती है ॥ ९८ ॥

(शिशिर)

चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधाना
वक्षस्सूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ।
ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोऽशुकानि
व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितभृतः शैशिरा वान्ति वाताः ॥९९॥

९९—शिशिर काल के पवन का विट सदृश आचरण

करता है चुम्बन कपोल का अलक ढके मुख सी-सी होय।
वक्षस्थल से वस्त्र उठा, रोमांच जगाता है कुच दोय।
पुष्ट जांघ कम्पित कर डाले, चीर हटा करके तनका।
विटसदृश आचरण, प्रकट-में होता शिशिर प्रभंजन का॥

कपोल प्रदेशों को चूमनेवाले, बालों को लटों के आ जाने से सुन्दर मुख में "सी-सी" की ध्वनि को उत्पन्न करनेवाले, चोली (ब्लाउज आदि) से ढकी छातियों पर पुष्ट स्तनों को रोमाञ्चित करनेवाले, ऊरु भागों को कँपानेवाले, विशाल जघनों के प्रान्त से परिधानीय वस्त्रों को ढीला करनेवाले ये शिशिर ऋतु के पवन स्पष्ट रूप से विटों के चरित्र को धारण करते हैं अर्थात् विटों के समान ये वात आचरण करते हैं॥ ९९॥

केशानाकुलयन् दृशो मुकुलयन् वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वन् पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेगकम्पं शनैः।
बारंबारमुदारसीत्कृतकृतो दन्तच्छदान् पीडयन्
प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत् कान्तासु कान्तायते॥१००॥

१००—शिशिर काल के पवन का पति-सदृश आचरण

छितराता कान्ता केशों को, मुकुलित कर देता है आँख।
झटका देकर वस्त्र खींचता, पुलकावलि प्रगटा गुस्ताख॥
ओठों से करवाता सी सी, पीड़ित करता है भरपूर।
पतिका सा आचरण करे, यह शिशिर कालका मारुतशूर॥

शिशिर ऋतु और कान्त का श्लेष से वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—केशों को अपने झोंक से अथवा रतिक्रीडा से व्याकुल (इधर-उधर) करता हुआ, दृष्टि को सुख से अथवा पुरुषस्पर्श से निमीलित करता हुआ, वस्त्र (जघनांशुक) को वेग से अथवा संभोग की इच्छा से बलात् आकर्षण करता हुआ, रोमाञ्च को शीतस्पर्श से अथवा शृङ्गार की उत्पत्ति से उत्पन्न करता हुआ, शरीर के अवयवों में धीरे-धीरे कंप को प्रकट करता हुआ, सुन्दर

सीत्कार करनेवाले अधरोष्ठों को शीत की अधिकता से अथवा दन्तक्षत से बारबार पीड़ित करता हुआ यह शिशिर ऋतु-सम्बन्धी पवन सुन्दरियों के विषय में इस समय प्राय: कान्त अर्थात् प्रियतम के समान व्यवहार करता है ॥१००॥

***यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्य स्पृहा मनोज्ञेऽपि ।**
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः-कामः सरोजिन्याः ॥

मन में चाह न होने पर सुन्दर वस्तु भी कुछ नहीं

सुन्दर वस्तु न होय मनोहर, यदि दिल में कुछ चाह नहीं ।
अति रमणीय सुधाकर उत्सुक, कमलिन के परवाह नहीं ॥

जिसके लिये जो रुचिकर नहीं होता है मनोहर होने पर भी उसमें उसको स्पृहा ही नहीं रहती है, जैसे कि चन्द्रमा के रमणीय होने पर भी उसमें कमलिनी के मन का अभिलाष नहीं होता अर्थात् वह विकसित नहीं होती ।

***वैराग्ये संचरत्येको-नीतौ भ्रमति चापरः ।**
श्रृङ्गारे रमते कश्चिद् भुवि भेदाः परस्परम् ॥

लोग अपनी रुचि के अनुसार वैराग्य, नीति व श्रृङ्गार से प्रेम करते हैं

है वैराग्य किसी को प्यारा, कोई नीति शास्त्र अनुरक्त ।
मद माता कोई श्रृँगार का, अपनी-अपनी रुचि के भक्त ॥

कोई एक वैराग्य में विचरण करता है, कोई दूसरा नीति में भ्रमण करता है और कोई श्रृङ्गार में रमता है इस प्रकार संसार में लोगों में परस्पर भिन्नता है ही ।

❀ इति शुभं भूयात् ❀

—:*:—

15955